आचार्य मानतुंग कृत

# भक्तामर

# BHAKTAMAR
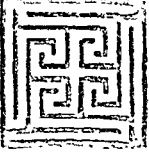
आचार्य रत्नाकर कृत

# रत्नाकर पच्चीसी

# RATNAKAR PACHISI

आचार्य अमितगति कृत

# सामायिक पाठ

# SAMAIK PATH

Translated by

*Himmat Sinha Sarupria*, R.A.S.
B.Sc., M.A.LL.B., Jain Sidhantacharya.

सम्पादक

प्रेमराज बोगावत • प्रेम भण्डारी

मूल्य : आठ रुपया

प्रकाशक
चन्द्रराज सिंघवी
सचिव-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर

अक्षय तृतीया
१४ मई, १९७५
प्रथम संस्करण : १००० प्रतियाँ

मुद्रक
वीरेन्द्र सिंघी
अनन्त प्रिण्टर्स
कचहरी रोड, जोधपुर

# सम्पादकीय

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज साहब की पावन प्रेरणा से जैन साहित्य की अमोल निधियां तथा भक्तिरस से ओतप्रोत श्रेष्ठतम कृतियां 'भक्तामर,' 'रत्नाकर पच्चीसी' एवं 'सामायिक पाठ' को श्रद्धालु भक्तों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

वाणी व लेखनी के धनी आचार्य मानतुंग, आचार्य रत्नाकर और आचार्य अमितगति ने अपनी हृदय-स्पर्शी शैली में भाव-विभोर और तन्मय होकर इन कृतियों के माध्यम से अपने-अपने आराध्य के अलौकिक गुणों का सुमधुर गायन प्रस्तुत किया है। इन स्तुतियों में भाव-विह्वल भक्त अपनी निर्मल और पावन श्रद्धा से उस विराट, चिरन्तन के प्रति अपना तादात्म्य तथा स्नेहानुबन्ध प्रगट करते हुए विराटता की कामना करते हैं। कवि के अन्तस्थल से उद्भूत इन भक्तिभाव के शीतल स्रोत से आज भी व्यथित और संतप्त मानव-मन को असीम शान्ति मिलती है।

प्रस्तुत पुस्तक में इन कृतियों का मूल, अन्वयार्थ, अर्थ, भावार्थ और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद एक साथ प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही यह पुस्तक जहां एक ओर नित्य पाठ करने वाले भक्तों के लिये उपयोगी है, वहां दूसरी ओर धार्मिक पाठशालाओं, शिक्षण शिविरों, स्वाध्याय केन्द्रों आदि में भी समान रूप से सहायक सिद्ध होगी।

जैन-जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान व इतिहासज्ञ श्री गजसिंहजी राठौड़ ने हमारे विशेष आग्रह पर, अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी, विद्वत्तापूर्ण तथा गवेषणात्मक भूमिका लिखकर इस प्रकाशन के महत्व को द्विगुणित किया है। इन कृतियों के प्रति व्याप्त कुछ भ्रांतियों का भी आपने अपने ठोस तर्कों से निराकरण किया, जो इतिहास के पाठकों के लिये विशेष महत्व का है। हम राठौड़ साहब के विशेष आभारी हैं।

श्री हिम्मतसिंहजी सरुपरिया का भी विशेष उल्लेख करना चाहेंगे जिन्होंने सरल, सरस व श्रेष्ठ शैली में इन कृतियों का आंग्ल भाषा में भावानुवाद किया है।

मण्डल के समस्त पदाधिकारियों विशेषतः अध्यक्ष श्री सोहननाथजी साहब मोदी, सचिव श्री चन्द्रराजजी साहब सिंघवी के आभारी हैं जिन्होंने इस प्रकाशन का कार्यभार हमें सौंपा तथा समय-समय पर हमें मार्गदर्शन भी दिया।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्य प्रकाशनों की तरह यह पुस्तक भी धर्म प्रेमियों, विद्वानों और इतिहासज्ञों के लिये समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी इसी विश्वास के साथ—

—सम्पादक

# अनुक्रमणिका

# भूमिका

सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक प्रत्येक साधक के लिए अपने आराध्य देव की स्तुति अथवा प्रार्थना का बहुत बड़ा महत्व माना गया है। प्रार्थना करते समय साधक अपने आराध्य के चरणों में अपने आपको पूर्णतः समर्पित कर जब भाव-विभोर हो भक्ति से झूम उठता है तो वह अपने आपको अनिर्वचनीय आलोकपूर्ण दिव्यलोक में अवस्थित-सा अनुभव करता है। इस प्रकार की तन्मयता की दशा में नवीन कर्मों के आस्रवों का अवरोध एवं पूर्व संचित पाप पुंज की अचिन्त्य महती निर्जरा होने के फलस्वरूप साधक को आभास होने लगता है कि वह अर्कतूल तुल्य तरल-भारविहीन हो गरुड़ वेग से ऊपर की ओर उड़ रहा है, निरन्तर ऊपर, और ऊपर, बहुत ऊपर उठ रहा है। ज्यों-ज्यों साधक का चित्त अपने आराध्य देव में अधिकाधिक तल्लीन होता जाता है, त्यों-त्यों उसका अनन्तकाल से घनान्धकार-पूर्ण अन्तर उत्तरोत्तर अति कमनीय अद्भुत आलोक से ओतप्रोत हो जगमगा उठता है। भक्त कवि ने इस स्थिति का सर्योक्तिक एव सुन्दर शब्दों में बड़ा हृदयग्राही चित्रण किया है—

मुक्तिगतोऽपीश विशुद्धचित्ते, गुणाधिरोपेण ममास्ति साक्षात्।
भानुर्दवीयानपि दर्पणेंऽशु-संगान्न किं द्योतयते गृहान्तः॥

जिस प्रकार निबिड़तम अन्धकारपूर्ण गृह के मध्य भाग में पड़े शीशे पर किसी छिद्र से सूर्य की किरण पड़ने पर उस गृह के गहन अन्धकार में प्रकाश की किरण प्रस्फुटित हो उठती है और सूर्य का पूर्ण प्रतिबिंब उस मुकुर पर पड़ते ही वह अंधकारपूर्ण गृहांगण प्रकाश से आलोकित हो उठता है, ठीक उसी प्रकार मुक्ति में विराजमान आराध्य देव से मन को जोड़ने पर अन्तस्तल में प्रकाश की किरणें प्रकट होने लगती हैं। और ज्योंही मन-मुकुर निर्मल हो पूर्णतः प्रभु के अभिमुख हो जाता है तो कोटि-कोटि सूर्यसमप्रभ आराध्य देव के अतुल अनन्त गुणों के प्रकाश से अन्तर का तिमिर सदा सर्वदा के लिए ध्वस्त हो जाता है और उसके स्थान पर अनुपम, अक्षय, अनन्त आलोक प्रकट हो जाता है। 'भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' हृदय की सभी गांठें स्वतः ही खुल जाती हैं, सभी प्रकार के संशय विनष्ट हो जाते हैं।

पर भक्त द्वारा अपने अनन्य आराध्य देव की स्तुति-प्रार्थना-भक्ति अथवा चिन्तन की प्रक्रिया में उत्कट भावनापूर्वक तन्मय होने की परमावश्यकता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत ज्ञानी भक्त आप्तवचनाधारा निम्नलिखित सूक्ति के अनुसार क्षण भर में कोटि-कोटि जन्मों द्वारा संचित कर्म समूह को अर्कतूलवत् सहज ही धुन डालता है—

यदक्षजीवो विधुनोति कर्म, तपोभिरुग्रैर्भवकोटिलक्षैः ।
ज्ञानी तु चैक क्षणतो हिनस्ति, तदत्र कर्मेति जिनाः वदन्ति ।।

वस्तुतः सभी क्रियाओं में भावना की बहुत बड़ी प्रधानता है, क्योंकि—'भाव-शून्याः क्रियाः शून्या ।' जो साधक उत्कट भावनापूर्वक अपने अन्तर में श्रद्धा की सुसुप्त अनन्त शक्ति को जागृत कर प्रभु भक्ति में आत्म विस्मृत हो जाता है, उसकी चरण शरण में सभी प्रकार के भौतिक एवं आध्यात्मिक वैभव स्वतः ही उपस्थित हो जाते हैं ।

साधना पथ का प्रत्येक पथिक परमा भक्ति पूर्वक अपने आराध्य देव जिनेश्वर की भक्ति में भावविभोर हो, कर्म समूह को ध्वस्त कर 'सत्य शिवं सुन्दरम्' स्वरूप को प्राप्त कर सके इस सदुद्देश्य से प्रस्तुत ग्रन्थ में भक्ति रस प्रधान उच्चकोटि की तीन रचनाएं हिन्दी एवं आंग्ल भाषा के सुगम अनुवाद सहित प्रस्तुत की गई हैं। अहिन्दी भाषी जैन-जैनेतर साधना रुचि सज्जन भी भक्ति सुधा, आत्म निवेदन-स्वात्मालोचन एवं उच्च आध्यात्मिक भावनाओं से अपने मानस को आप्यायित कर सकें, इसी दृष्टि से इन तीन कृतियों का प्रस्तुत पुस्तक में अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है ।

## • भक्तामर

पहली रचना है आदिनाथ स्तोत्र'। यह स्तोत्र 'भक्तामर' के नाम से अत्यधिक-लोकप्रिय है। इस स्तोत्र के प्रथम शब्द 'भक्तामर' के आधार पर इस कृति का नाम लोक में 'भक्तामर' के नाम से रूढ़ हो गया है। अनुयोग द्वार सूत्र में वर्णित नामकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत 'आदानपद-नाम' के उल्लेखानुसार भी इस स्तोत्र के इस रूढ़ नाम का औचित्य सिद्ध होता है। अति मधुर 'वसन्ततिलका' छन्द में आवद्ध अद्भुत शब्द सौष्ठव पूर्ण इस स्तोत्र के एक-एक अक्षर में हिलोरे लेता हुआ भक्ति-सुधा का सागर केवल उद्गाताओं ही नहीं श्रोताओं तक के त्रिविध ताप का शमन कर उन्हें अनिवर्चनीय आनन्द प्रदान करता है। मन के तार को प्रभु के साथ जोड़ने की इस स्तोत्र में अत्यद्भुत क्षमता है। जिस प्रकार विद्युत केन्द्र (*Generator*) से किसी घर के तार का स्विच जोड़ देने पर वह घर प्रकाश से जगमगा उठता है, उसी प्रकार इस स्तोत्र के माध्यम से मन का तार अनन्त शक्तिशाली अक्षय-अव्याबाध अनन्त सुख के धाम जिनेश्वर प्रभु से जोड़ देने पर मन-मन्दिर दिव्य ज्योति से जगमगा उठता है। साधक यदि निमेष मात्र के लिए अपने मन के तार को प्रभु से पृथक् न होने दे तो अन्ततोगत्वा अवश्यमेव स्वयं भी प्रभुमय बन जाता है ।

वस्तुतः 'भक्तामर स्तोत्र' बड़ा ही प्रभाव पूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण है। आज जैन जगत मे जितने स्तोत्र प्रचलित हैं, उनमें यह सर्वाधिक लोकप्रिय है। इस स्तोत्र की रचना आचार्य मानतुंग ने की। वे आर्य सुहस्ती की परम्परा के आचार्य वज्रसेन के

शिष्य चन्द्र से उद्भुत हुई चन्द्र शाखा अथवा चन्द्र गच्छ के छट्ठे आचार्य थे। आपके गुरु का नाम मान देव था। जिन्होंने जैन संघ की महान् संकट से रक्षा की और 'तिजयपहुत्तपयासय' नामक प्रसिद्ध स्तोत्र की रचना की। आचार्य मानतुंग का जीवन परिचय 'प्रभावक चरित्र' तथा 'भक्तामर' कथाओं में उपलब्ध होता है। प्रभावक चरित्र में आपका जो परिचय दिया गया है, वह सार रूप में इस प्रकार है—

'आचार्य मानतुंग का जन्म वाराणसी के ब्रह्म क्षत्रिय श्रेष्ठि कुल में हुआ। आपके पिता का नाम श्रेष्ठी धनदेव था। दिगम्बर मुनि चारुकीर्ति का उपदेश सुन कर मानतुंग ने दिगम्बरी दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के समय मुनि चारुकीर्ति ने मानतुंग का नाम महाकीर्ति रखा। वे बड़ी निष्ठा पूर्वक तपश्चरण करते हुए मुनि-व्रत का पालन करने लगे। कालान्तर में अपनी बहिन द्वारा कमण्डलु के जल में जलीय जन्तु दिखाए जाने पर महाकीर्ति ने आचार्य अजीतसिंह के पास श्वेताम्बरी श्रमण-दीक्षा ग्रहण की।

वाराणसी में उस समय राजा हर्ष राज्य करता था[1]। अपनी राज्य सभा के कविरत्न महाकवि मयूर और बाण[2] द्वारा प्रदर्शित अद्भुत चमत्कारों से प्रभावित राजा हर्ष ने आचार्य मानतुंग के अलौकिक प्रभाव की बात सुन कर उन्हें सादर अपनी राज्य सभा में आमन्त्रित किया। दृढ़ सम्यक्त्वी मन्त्री द्वारा सानुरोध यह कहने पर कि भावना से भी प्रभावना अत्यधिक महत्वशालिनी है, आचार्य मानतुंग राजसभा में आ गए। राजा ने उन्हें कोई अद्भुत चमत्कार दिखाने की प्रार्थना की। आचार्य मानतुंग ने राजा की प्रार्थना के उत्तर में कहा—'राजन् हम आत्म-साधना-रत श्रमण हैं। हम कोई गृहस्थ नहीं, जो भौतिक लाभ हेतु राज-रंजन आदि किया करें। किन्तु जिस कार्य से जिन शासन की प्रभावना होती हो वह कार्य हम कर सकते है।

राजा हर्ष आचार्य मानतुंग के चमत्कार को देखने के लिए कृत संकल्प था अतः उसने (सम्भवतः आचार्य मानतुंग की सहमति से) राज पुरुषों को आदेश दिया कि उन्हें (मानतुंग को) एडी से चोटी तक लोह शृंखलाओं से जकड़ कर अन्धेरी कोठरी में बन्द कर अर्गला, ताले आदि लगा दिए जायं। कोठरी के द्वार पर प्रहरी अहर्निश देख भाल रखें। राजाज्ञा का अक्षरशः पालन कर सेवकों ने ४८ लोहे की शृंखलाओं

---

१. ········पुरी वाराणसी त्यस्ति साक्षादिव दिवः पुरी ।। ४
········तत्र श्री हर्ष देवाख्यो राजा न तु कलंक भृत् ।। ५

—प्रभावक चरित्र, पृ. ११२

२. दिगम्बर परम्परा की कथाओं में हर्ष के स्थान पर अवन्ती के राजा भोज तथा कवि मयूर एवं बाण के स्थान पर कवि धनजय और कालीदास की प्रति स्पर्धा का उल्लेख है।

से आपाद-कण्ठ जकड़ कर एक अन्धेरी कोठरी में बन्द किया। द्वार पर अर्गला और ताले लगा दिये।[1]

आचार्य मानतुंग ने उस काल कोठरी में नितान्त नीरव एवं एकान्त स्थान पा बिना किसी आक्रोश अथवा क्षोभ के एकाग्रचित्त हो परमा भक्ति के साथ आदिनाथ भगवान ऋषभदेव की स्तुति करना आरम्भ किया। एक-एक श्लोक की रचना एवं उसके सस्वर पाठ के साथ ही एक-एक करके बन्धन अथवा कोठरियों के ताले तड़ा-तड़ टूटने लगे। अन्तिम (श्वेताम्बर परम्परानुसार ४४ वें तथा दिगम्बर परम्परा-नुसार ४८वें) श्लोक के पाठ के साथ ही अन्तिम बन्धन अथवा ताला एवं कोठरी का द्वार स्वतः ही खुल गया। बन्धन मुक्त आचार्य मानतुंग पूर्वाचल से उदीयमान मरीचिमालि के समान राज्य सभा में उपस्थित हुए।

आत्म शक्ति के इस अद्भुत चमत्कार को देख कर राजा ने मानतुंग के चरणों में मस्तक झुका निवेदन किया—

> देशः पुरमहं धन्यः, कृत पुण्यश्च वासरः।
> यत्र ते वदनं प्रेक्षि, प्रभो! प्रातिभसप्रभम् ।।१४४
> आदेशं सुकृता वेशं, प्रयच्छं स्वच्छता निधे!
> आजन्मरक्षादक्षः स्याद् यथा मे त्वदनुग्रहः ।।१४५

आचार्य मानतुंग ने वाराणसीपति हर्ष की प्रार्थना पर राज्य सभा में धर्मोपदेश दिया और हर्ष सदा के लिए आचार्य श्री का परम भक्त बन गया।

आचार्य मानतुंग द्वारा रचित वही आदिनाथ स्तोत्र आज 'भक्तामर स्तोत्र' के नाम से जनप्रिय एव प्रसिद्ध है। जड़ पदार्थों के संयोग से 'एटम बम' जैसी प्रलयंकर शक्ति तथा हाइड्रोइलेक्ट्रिक जैसी सर्जनकारिणी शक्ति उत्पन्न हो सकती है तो एक प्रबुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का सर्व शक्तिमान परम पिता परमेश्वर के साथ मन जुड़

---

१. (क)

> ....इत्युक्ते प्राह भूपालो निगडैरेष यन्त्र्यताम्।
> आपदमस्तक ध्वान्ते, निवेश्य प्रावदन्निति ।।१३५
> ततोऽपवरके राजपुरुषैः परुषैस्तदा।
> निगडैश्च चतुश्चत्वारिंशत्संख्यैरयोमयैः ।।१३६
> अतिजीर्ण सनाराचं, तालकं प्रददुस्ततः।
> सूचि भेद्यतमस्काण्डः, स पातालनिभो बभौ ।।१३८
>
> —प्रभावक चरित्र, पृ. ११६

(ख) श्वेताम्बर परम्परा की भक्तामर कथाओं में एक के अन्दर एक बन्द होने वाली ४४ कोठरियों में तथा दिगम्बर परम्परा की कथाओं में इसी प्रकार की ४८वीं कोठरी में मानतुंग को बन्द करने और प्रत्येक कोठरी के द्वार पर ताले लगाने का उल्लेख है।

जाने पर सहज ही अचिन्त्य परमाद्भुत चमत्कार प्रकट होने में किसी विचारवान व्यक्ति के लिए किसी प्रकार की शंका अथवा सन्देह का अवकाश नहीं रह जाता।

आचार्य मानतुंग द्वारा 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना के सम्बन्ध में जो कथानक श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्पराओं के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं उन्हें यदि इतिहास की कसौटी पर कसा जाय तो स्पष्टतः सिद्ध हो जायगा कि इन कथानकों में केवल इतना-सा मूल ऐतिहासिक तथ्य ही सुरक्षित रह पाया है कि किसी अज्ञातनामा राजा के हठ पूर्ण आग्रह पर आचार्य मानतुंग ने अपरिहार्य विशेष परिस्थितियों में 'भक्ता-मर स्तोत्र' की रचना की। उत्कट मनोयोग पूर्वक की गई आदिनाथ की स्तुति से अद्भुत चमत्कार प्रकट हुआ और उसके फलस्वरूप जिन शासन की महती प्रभावना हुई। इन कथानकों में राजधानी, राजा और राजा के कवियों के जो नाम दिये गये हैं वे इतिहास के सन्दर्भ में विचार करने पर पूर्णतः विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

आचार्य मानतुंग का स्वर्गारोहण वीर निर्माण सं० ७५८ में हुआ। दिगम्बर परम्पराओं की भक्तामर कथाओं में उल्लिखित धारा अथवा अवन्ती का राजा भोज अपने पितृव्य मुंज के निधन के पश्चात् वीर नि० सं० १२४८ में अवन्ती के राज्य सिंहासन पर (धारा नगरी में) बैठा[1]। इसी प्रकार कथानक में जिन कवियों का उल्लेख है उनका काल भी भिन्न-भिन्न है।

इसी प्रकार प्रभावक चरित्र में आचार्य मानतुंग की जन्मस्थली वाराणसी में उनके समकालीन (लगभग वीर नि० सं० ७०० से ७५८ के आसपास) राजा हर्ष के राज्य का उल्लेख किया है, उसकी पुष्टि भी किसी इतिहास के ग्रंथ से नहीं होती। आचार्य मानतुंग का स्वर्गारोहण काल वीर नि० सं० ७५८ अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सुनिश्चित है। वीर नि० सं० ६२० में आर्य वज्रसेन के स्वर्गस्थ होने पर उनके शिष्य आर्य चन्द्र गणाचार्य हुए। चन्द्र के पश्चात क्रमशः सामन्त भद्र, प्रद्योतन, मानदेव और मानतुंग गणाचार्य हुए। वीर नि० सं० ६२० से ७५८ के बीच की १३८ वर्ष की अवधि में वज्रसेन के पश्चात मानतुंग तक ५ आचार्य हुए। मोटे तौर पर १३८ वर्ष में हुए ५ आचार्यों में से प्रत्येक का आचार्य काल २७॥ वर्ष आता है जो सर्वथा समुचित प्रतीत होता है।

आचार्य प्रभाचन्द ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उन्होंने अपने समय में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की यथाशक्य पर्याप्त खोज करने के पश्चात प्रभावक चरित्र की रचना की। ऐसी स्थिति में जब तक कि अन्य कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हों तब उनके द्वारा किये गए उल्लेखों पर अविश्वास करने का कारण दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य मानतुंग के आचार्य काल में वीर नि० सं० ७५८ के आसपास भारत

---

१. मुंज और भोज का काल अमित गति के परिचय में आगे दिया जा रहा है।

वर्ष के बहुत बड़े भू भाग पर भारशिव राजवंश का प्रभुत्व था। इसी समय के आस-पास भारशिवों ने कुषाणों की राजसत्ता का अन्त कर वाराणसी में दश अश्वमेध यज्ञ किए थे। हिन्दू धर्म का भी उस समय में उल्लेखनीय प्रसार हुआ था। प्रभावक-चरित्रकार ने मानतुंग के समकालीन हर्ष नामक वाराणसी के जिस राजा का उल्लेख किया है, बहुत सम्भव है वह भारशिवों का अधीनस्थ अथवा स्वतन्त्र राजा हो। कवियों के नामों का जहाँ तक सम्बन्ध है, वे काल्पनिक प्रतीत होते हैं। वास्तविक नाम इतिहास की गहरी परतों में दब चुके हैं। जन-श्रुतियों एवं कथानकों में इस प्रकार के काल्पनिक नामों का होना सम्भव है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण विश्व भर के कथा साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक घटनाक्रम के विश्लेषणात्मक गहन अध्ययन से यही प्रकट होता है कि आचार्य मानतुंग के वास्तविक समय पर विचार किए बिना आज तक विद्वानों ने वाराणसी के हर्ष नामक राजा का कान्यकुब्जाधिपति हर्ष एवं धाराधिपति भोज के रूप में उल्लेख कर उनके समय के प्रसिद्ध कवियों के नाम भक्तामर कथाओं में जोड़ दिए हैं। जैन जगत की सर्वाधिक प्रिय कृति रचयिता आचार्य मानतुंग के जीवन परिचय में इस प्रकार के भ्रान्त एवं निराधार उल्लेख वस्तुत: विचारकों के मन में खटकने वाले हैं। आशा है भक्तामर स्तोत्र के विभिन्न संस्करण समाज के समक्ष प्रस्तुत करने वाले मूर्धन्य विद्वान नवीन सस्करणों में एतद्विषयक अन्धानुकरण न कर विशद प्रकाश डालेंगे।

आचार्य मानतुंग की दूसरी कृति 'भय हर स्तोत्र' भी बड़ी प्रभावपूर्ण प्रार्थना है। इन दो कृतियों के अतिरिक्त आचार्य मानतुंग की अन्य कोई कृति आज जैन साहित्य में उपलब्ध नहीं होती।

## • रत्नाकर-पच्चीसी

प्रस्तुत ग्रन्थ में जो दूसरी रचना दी गई है, वह है 'रत्नाकर पंच विंशती (पच्चीसी)'। यह आत्मालोचन की बड़ी ही भावपूर्ण एवं उच्च-कोटि की रचना है। महाकवि कालीदास के अतिप्रिय छन्द 'इन्द्रवज्रा' में कवि रत्नाकर द्वारा विरचित यह कृति दैनन्दिनी ही नहीं अपितु जन्मजन्मान्तरों में किए गए दुरितौघ को भस्मसात करने की अद्भुत क्षमता रखती है। मैंने आज से ४० वर्ष पूर्व मेरे आराध्य गुरुदेव एल. पी. जैन के समक्ष इसे 'सुन्दर लघु प्रतिक्रमण' की संज्ञा दी थी। इसके रचनाकार का जीवन परिचय अभी तक मुझे कहीं से उपलब्ध नहीं हुआ है अत: उसे यहाँ देने में असमर्थता है।

## • सामायिक पाठ

तीसरी रचना जो प्रस्तुत ग्रन्थ मे दी गयी है, वह 'सामायिक पाठ' के नाम से दी गयी है। वस्तुत: इस रचना का नाम है—'भावना द्वात्रिंशिका'। आचार्य अमित-

गति की सामायिक पाठ नामक कृति उपलब्ध है, जिसमें १२० श्लोक हैं। प्रस्तुत 'भावना द्वात्रिंशिका' के तृतीय श्लोक में सर्वाधिक सुख अथवा दु:ख की अवस्थाओं में जो समभाव प्रदान करने की प्रभु से प्रार्थना की गई है, सम्भवत: इस पाठ को लक्ष्य में रख कतिपय विद्वानों ने इसका नाम 'सामायिक पाठ' रख दिया हो। पर वस्तुत: आचार्य अमितगति की 'सामायिक पाठ' रचना उपलब्ध है। जो इन्हीं आचार्य की प्रस्तुत कृति 'भावना द्वात्रिंशिका' से लगभग चौगुनी बड़ी है। वैसे देखा जाय तो अनेक पुस्तकों में 'भावना द्वात्रिंशिका' को 'सामायिक पाठ'—इस शीर्षक के अन्तर्गत भी दिया गया है।

भावना द्वात्रिंशिका में आत्मा को अमृतत्व प्रदान करने वाली उच्चकोटि की आध्यात्मिक भावना के ३२ श्लोक हैं। इसके रचनाकार आचार्य अमितगति का नाम दिगम्बर परम्परा के मूर्द्धन्य विद्वानों एवं कवियों में गिना जाता रहेगा।

आचार्य अमितगति ने उज्जयिनीपति राजा मुंज के शासनकाल, विक्रम सं० १०५० में 'सुभाषित रत्नसन्दोह'[1] नामक ग्रन्थ की, विक्रम स० १०७० में 'धर्म-परीक्षा'[2] तथा विक्रम सं० १०७३ में 'पंचसग्रह'[3] नामक ग्रन्थ की रचना की। इस बात का स्पष्ट उल्लेख उक्त तीनों ग्रन्थों की प्रशस्तियों में स्वयं आचार्य अमितगति ने किया है। आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक अपने ग्रन्थ के 'मुंजराज-प्रबन्ध' में लिखा है कि वि० सं० १०७८ में मुंज के स्वर्गस्थ होने पर भोज नृपति राज्य सिंहासन पर बैठा।[4] इन उल्लेखों से सिद्ध होता है कि आचार्य अमितगति महाराज मुंज के समकालीन थे और उनका समय विक्रम सं० १०५० के कतिपय वर्ष पूर्व से लेकर विक्रम सं० १०७३ के कतिपय वर्ष पश्चात तक रहा।

---

१. समारूढे पूतत्रिदशवसति विक्रमनृपे,
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पंचाशदधिके (१०५०)
समाप्ते पंचम्यामवति धरणीं मुंज नृपतौ,
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम् ।। ९२२
—सुभाषितरत्न सन्दोह (प्रशस्ति)

२. संवत्सराणां विगते सहस्रे, ससप्ततौ (१०७०) विक्रम पार्थिवस्य ।
इदं निषिद्धान्यमतं समाप्तं, जिनेन्द्र धर्मामिति युक्तिशास्त्रम् ।।
—धर्म परीक्षा

३. त्रिसप्तत्याधिकेऽब्दानां, सहस्र शक विद्विषः ।
मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्रं मनोरमम् ।।
—पंच संग्रह (प्रशस्ति)

४. विक्रमाद्वासरादष्टमुनिव्योमेन्दु (१०७८) संमिते ।
वर्षे मुंजपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः ।।
—प्रबन्ध चिन्तामणि-श्री मुंजराज प्रबन्ध

**गुरु परम्परा**—आचार्य अमितगति ने अपने ग्रन्थ—'धर्म परीक्षा' में[1] अपनी गुरु परम्परा आचार्य वीरसेन से तथा 'सुभाषित रत्नसन्दोह' एवं 'आराधना' (संस्कृत) की प्रशस्ति में देवसेन से दी है। माथुर संघ की गुर्वावली में वीर सेन से पहले माथुर संघ अपरनाम निःपिच्छिक संघ के संस्थापक रामसेन का नाम उल्लिखित है।[2]

उपर्युक्त ग्रन्थों की प्रशस्तियों पर माथुर संघ की गुर्वावली के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर अमितगति की गुरु परम्परा का क्रम इस प्रकार निश्चित होता है—

१. आचार्य रामसेन
२. आचार्य वीरसेन
३. आचार्य देवसेन
४. आचार्य अमितगति (प्रथम)
५. आचार्य नेमिषेण
६. आचार्य माधव सेन
७. आचार्य अमितगति (द्वितीय)

**शिष्य परम्परा**—आचार्य अमितगति की शिष्य परम्परा का किंचित् परिचय आचार्य अमर कीर्त्ति द्वारा वि० सं० १२४७, भाद्रपद शुक्ला १४ को पूर्ण किये गये अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ—'छक्कम्मोवएस' से प्राप्त होता है।[3] इस ग्रंथ में आचार्य अमितगति की शिष्य परम्परा इस प्रकार दी गई है—

१. आचार्य अमितगति (द्वितीय)
२. आचार्य शान्तिषेण
३. आचार्य अमरसेन
४. आचार्य श्रीषेण
५. आचार्य चन्द्रकीर्ति
६. आचार्य अमरकीर्ति

---

१. सिद्धान्तपाथोनिधि पारगामी, श्रीवीरसेनोऽजनि सूरिवर्यः।
श्रीमाथुराणां यमिनां वरिष्ठः, कषाय विध्वंसविधौ पटिष्टः॥
ध्वस्ता शेष ध्वान्तवृत्तिर्मनस्वी, तस्मात्सूरिर्देवसेनोऽजनिष्ट।
लोको द्योती पूर्व शैलादिवार्कः, शिष्टा भीष्टः स्थेयसोऽपास्त दोषः॥
भासिताखिल पदार्थसमूहो, निर्मलोऽमित गतिर्गणनाथः।
वासरो दिनमणेरिव तस्माज्जायते स्म कमलाकर बोधी॥
नेमिषेणगणनायक स्ततः पावनं वृषमधिष्ठितो विभुः।
पार्वतीपतिरिवास्त मन्मथो, योग गोपनपरो गणार्चितः॥
कोपनिवारी शमदमधारी, माधवसेन. प्रणतरसेनः।
सोऽभवदस्माद्गलितमदोस्मा, यो यतिसारः प्रशमितसारः।
धर्मपरीक्षामकृतवरेण्यां, धर्मपरीक्षामखिलशरण्याम्।
शिष्यवरिष्ठोऽमितगतिनामा, तस्य पटिष्टोऽनघगतिधामा॥ धर्मपरीक्षा॥
२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग १, पृ. ३४६
३. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २, अंक ३

संघ परम्परा—आचार्य अमितगति माथुर संघ के आचार्य थे, यह उन्होंने स्वयं ने धर्म परीक्षा, सुभाषित रत्न संदोह आदि अपने ग्रन्थों की प्रशस्तियों में प्रकट किया है। माथुर संघ काष्ठा संघ से निकले चार गच्छों में से एक था।[1] काष्ठा संघ एवं माथुर संघ की उत्पत्ति बताते हुए आचार्य देवसेन ने 'दर्शनसार में लिखा है—

आसी कुमार सेणो, णंदियडे विणयसेण दिक्खियओ।
सण्णासमंजणेण य, अगहियपुणदिक्खओ जादो ॥३३॥
परिवज्जिऊण पिच्छं, चयरं घित्तूण मोह कलिएण।
उम्मग्गं संकलियं, बागड विसएसु सव्वेसु ॥३४॥
इत्थीणं पुण दिक्खा, खुल्लयलोयस्स वीर चारियत्तं।
कक्कस केसग्गहणं, छट्ठ च गुणव्वदं नाम ॥३५॥
आयमसत्थ पुराणं, पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि।
विरइत्ता मिच्छत्तं, पवट्टियं मूढ बोएसु ॥३६॥
सो समण संघवज्जो, कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो।
चत्तोवसमो रुद्दो, कट्ठं संघं परू वेदि ॥३७॥
सत्तसए तेवण्णे, विक्कय रायस्स मरणपत्तस्स।
णंदियडे वर गाये, कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥३८॥

अर्थात् "विनयसेन के पास दीक्षित कुमारसेन ने नंदितट नगर में संयम से भ्रष्ट हो मयूर पिच्छी का परित्याग कर चंवरी गौ की पूंछ के बालों की पिच्छी ग्रहण की और उस अज्ञानी ने समस्त बागड़ प्रान्त (सागवाड़ा के आसपास के प्रदेश) में उन्मार्ग का प्रचार किया। कुमारसेन ने स्त्रियों को दीक्षा देने, क्षुल्लकों का भिक्षाचरी का, मुनियों को कड़े बालों की पिच्छी रखने का और रात्रि भोजन त्याग रूप छट्ठे गुण व्रत का विधान किया। उसने अपने ढंग के कुछ और ही प्रकार के आगम, शास्त्र, पुराण तथा प्रायश्चित आदि ग्रन्थों की रचना का मूढ लोगों में मिथ्यात्व का प्रचार किया। इस प्रकार उस मुनि संघ से बहिष्कृत, समय मिथ्या दृष्टि, उपशम त्यागी एवं रौद्र परिणाम वाले कुमारसेन ने महाराज विक्रम की मृत्यु के ७५३ वर्ष पश्चात नंदितट नगर में काष्ठा संघ का प्ररूपण किया।"

माथुर संघ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में लिखा है—

तत्तो दुसएतीदे, महुराए माहुराण गुरुणाहो।
णामेण रायसेणो, णिप्पिच्छं वण्णियं तेण ॥४०

---

१. काष्ठा संघो भुवि ख्यातो, जानन्ति नृसुरासुराः।
तत्र गच्छाश्च चत्वारो, राजन्ते विश्रुताः क्षितौ ॥
श्रीनन्दितट संज्ञश्च, माथुरो बागड़ाभिधः।
लाडबागड़ इत्येते, विख्याताः क्षिति मण्डले ॥
—सुरेन्द्र कीर्ति भट्टारक द्वारा रचित पट्टावली

सम्मत्तपयडिमिच्छंतं, कहियं जं जिणिदविवेसु।
अप्पपरिणिट्ठिएसु य, ममत्तबुद्धीए परिवसणं ॥४१
एसो मम होउ गुरु, अवरो णत्थित्ति चित्त परियरणं।
सगगुरु कुलाहिमाणो इयरेसु वि भंगकरणं च ॥४२

अर्थात्—"काष्ठा संघ की उत्पत्ति के २०० वर्ष पश्चात् (विक्रम की मृत्यु के ६५३ वर्ष पश्चात्) मथुरा में माथुर संघ का प्रधान गुरु (संस्थापक) रामसेन हुआ और उसने किसी भी प्रकार की पीच्छी न रखने का विधान किया। उसने स्व प्रतिष्ठापित विम्बों की अधिक तथा अन्य द्वारा प्रतिष्ठापित जिन बिंबों की न्यून भाव से पूजा वन्दना करने, अपने पराए गुरु का भेदभाव रखने, अपने संघ का अधिक मान तथा अन्य संघों का मान भंग करने आदि सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व का उपदेश दिया।"

इस प्रकार दर्शनसार के कर्त्ता देवसेन ने काष्ठा संघ और माथुर संघ—इन दोनों संघों को एक प्रकार से मिथ्यात्व का प्रवर्तक बताया है। नीतिसार में भी निम्न-लिखित श्लोक द्वारा ५ संघों को जैनाभास बताया गया है जिनमें गो पुच्छक (काष्ठा संघ) और निष्पिच्छक (माथुर संघ) के नाम सम्मिलित हैं—

गोपुच्छक: श्वेतवासो, द्राविडो यापनीयक:।
नि:पिच्छकश्चेति पञ्चैते, जैनाभासा: प्रकीर्तिता:॥

माथुर संघ की एक दो मूल मान्यताओं का निम्नलिखित ढाढसी गाथाओं द्वारा बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है—

पिच्छे ण हु सम्मत्तं, करगहिए मोरचमर डंवरए।
अप्पा तारइ अप्पा, तम्हा अप्पा वि झायव्वो॥
सेयंबरो य आसंबरो य, बुद्धो य तह य अण्णो य।
समभाव भावियप्पा, लहए मोक्ख ण संदेहो॥

हाथ में मयूरपिच्छी अथवा गोपिच्छी धारण करने में सम्यक्त्व नहीं है। आत्मा का उद्धार केवल आत्मा ही कर सकता है अत: केवल आत्मा का ही ध्यान करना चाहिए। श्वेताम्बर हो अथवा दिगम्बर, बुद्ध हो अथवा कोई अन्य, जो समभाव में प्रतिस्थापित कर अपनी आत्मा को भावित करता है, वही निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त करता है।

यहां यह विचारणीय है कि कतिपय दिगम्बराचार्यों ने काष्ठा संघ और माथुर संघ को समिथ्यात्वी अथवा जैनाभास बताया है पर अमितगति द्वारा रचित उपासकाचार जो कि अमितगति श्रावकाचार के नाम से प्रसिद्ध है—आज सम्पूर्ण दिगम्बर समाज में सर्वमान्य है। इससे यही प्रतीत होता है कि सम्भवत: सम्प्रदायाभिनिवेश-वशात अथवा पिच्छि का परित्याग करने के कारण ही माथुर संघ को उस समय जैनाभास और समिथ्यात्वी बताया गया है।

अमितगति की रचनाएं—१. सुभाषित रत्न संदोह (वि. स. १०५०), २. धर्म-परीक्षा (वि. सं. १०७०), ३. पंच संग्रह (वि. सं. १०७३), ४. उपासकाचार-अमितगति श्रावकाचार, ५. आराधना (संस्कृत), ६. सामायिक पाठ और ७. भावनाद्वात्रिंशतिका-ये सात अमितगति की रचनाएं उपलब्ध है। इनमें से धर्म परीक्षा इनसे पूर्व की प्राकृत रचना धम्मपरिक्खा और आराधना (संस्कृत) प्राकृत मूलाराधना पर पूर्णत: आधारित हैं। योगसार प्राभृत भी कतिपय विद्वानों द्वारा इन्हीं अमितगति की रचना मानी जाती है पर निश्चितरूपेण वस्तुत: यह इनके परदादा गुरू आचार्य अमितगति (प्रथम) की ही रचना है। इस ग्रन्थ के अन्तिम से पहले ८३ वें श्लोक में अमितगति ने अपने 'नि: संगात्मा' विशेषण का प्रयोग करते हुए लिखा है—"नि:संगात्मामितगतिरिद प्राभृतं योगसारं।" अमितगति द्वितीय ने भी अपने ग्रन्थ 'सुभाषितरत्नसंदोह' के श्लोक सं. ९१५ में अपने परदादागुरु अमितगति (प्रथम) के लिये 'त्यक्तनि:शेषसंग:' विशेषण का प्रयोग किया है। योगसार प्राभृत अमितगति (प्रथम) की रचना है, इस बात को सिद्ध करने के लिये केवल एक यही प्रमाण पर्याप्त है। दर्शनसार के उल्लेखों की प्रामाणिकता:—यों तो दर्शनसार में उल्लिखित अनेक बातें केवल विचारणीय ही नहीं अपितु विवादास्पद भी हैं, जिन सब पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने का यह उपयुक्त स्थल अथवा अवसर नहीं। फिर भी एक आत्यन्तिक महत्व के प्रश्न को विद्वानों के विचारार्थ रखना परमावश्यक प्रतीत होता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि आचार्य देवसेन ने दर्शनसार की गाथा संख्या ३८ में काष्ठा संघ की उत्पत्ति का समय वि. सं. ७५३ और माथुर संघ की उत्पत्ति का समय गाथा संख्या ४० में विक्रम सं. ९५३ बताया है। तदनन्तर गाथा सं. ५० में उन्होंने यह उल्लेख किया है कि संवत् ९०९ में दर्शनसार की रचना की। इसका सीधा-सा अर्थ है कि वि.स. ९५३ में उत्पन्न माथुर संघ की उत्पत्ति से ४४ वर्ष पूर्व सं. ९०९ में आचार्य देवसेन ने इस ग्रन्थ की रचना की। कोई भी ग्रन्थकार किसी ग्रन्थ की रचना करते समय भविष्य में ४४ वर्ष पश्चात घटित होने वाली घटना के सम्बन्ध में लिखे कि ऐसी घटना घटित हुई, यह किसी भी दशा में संभव नहीं। इस पर कोई विचारवान् व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता। कुछ विद्वानों ने इस पर यह विचार व्यक्त किया है कि माथुर संघ की उत्पत्ति का समय वि. सं. ९५३ और आचार्य देवसेन द्वारा दर्शनसार की रचना का समय शक संवत ९०९ हो सकता है। पर इस प्रकार का विचार उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि कोई भी लेखक अपनी एक ही कृति में दो प्रकार के सम्वतों का उल्लेख कर भ्रान्ति उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करेगा। यदि उसे दो प्रकार के सम्वतों के लेख की आवश्यकता अनिवार्य प्रतीत हो तो वहां वह उन भिन्न-भिन्न संवतों का स्पष्टत: नामोल्लेख अवश्य करेगा। देवसेन ने दर्शनसार में जहां-जहां समय का उल्लेख किया है वहां-वहां केवल विक्रम

संवत का ही उल्लेख किया है। पूरे दर्शनसार में कहीं शक संवत् का उल्लेख नहीं है। गाथा संख्या ५० में वि. सं. अथवा अन्य किसी संवत् का उल्लेख किये बिना केवल "णवसए णवए"–अर्थात् '६०६ में' यही उल्लेख किया है। ऐसी स्थिति में यह विक्रम सं. से भिन्न अन्य कोई संवत् नहीं हो सकता। इस पर फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वि. सं. ६०६ में 'दर्शनसार' की रचना करते समय ४४ वर्ष पश्चात् वि. सं. ६५३ में उत्पन्न हुए माथुर संघ की उत्पत्ति का विवरण आचार्य देवसेन ने किस प्रकार दिया? इस प्रश्न के सभी पहलुओं पर समीचीनतया विचार करने के पश्चात् हमें यह अनुमान करने को बाध्य होना पड़ता है कि आचार्य देवसेन उस गाथा के पूर्वार्द्ध को 'रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवइए' के स्थान पर निम्नलिखित रूप में लिखा होगा—

"रइओ दंसणसारो, हारो भव्वाण णवसए णवइए।

छाया:–रचितो दर्शनसार:, हार: भव्यानां नवशते नवतिके।

अर्थात्—(वि. सं.) ६६० में दर्शनसार की रचना की। संभवत: पूर्वकाल में कोई लिपिकार ई को चबा गया, अथवा स्वयं दर्शनसारकार या प्रबुद्ध विद्वान लिपिकार ने छंदभंग की त्रुटि को शुद्ध करने की दृष्टि में 'छन्दोऽनुरोधात्' 'इ' का लोप कर दिया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि छन्दोनुरोधात् 'णवइए' का 'णवए' किया गया है—यह तथ्य आज तक किसी विद्वान के ध्यान में नहीं आया। इसके फलस्वरूप इतिहास के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् भी सं. ६६० की बजाय इस पद का अर्थ ६०६ करते रहे और इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार का व्यर्थ ही ऊहा-पोह चलता रहा। "णवसए णवइए" पाठ स्वीकार कर लेने पर अथवा छन्दो-नुरोधात् किये गये "णवसए णवए" का अर्थ ६६० स्वीकार कर लिये जाने पर गुत्थी स्वत: ही सुलझ जाती है और आचार्य देवसेन का समय भी विक्रम सं. ६०६ के स्थान पर ८१ वर्ष आगे का निश्चित हो जाता है। आशा है इस सम्बन्ध में इतिहास के विद्वान और अधिक प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

अन्त में मैं सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अधिकारियों को इस प्रकार के सर्व-जनोपयोगी प्रकाशन के लिये बधाई देते हुए कामना करता हूं कि हजारों लाखों साधक इस पुस्तक में दी गई उत्कृष्ट भक्तिरस प्रधान तीनों कृतियों के सहज सुगम अनुवाद का नियमित स्वाध्याय कर अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होंगे।

राठौड़ सदन, जयपुर.
दि ३-१-७५

गजसिंह राठौड़
न्याय, व्या. तीर्थ
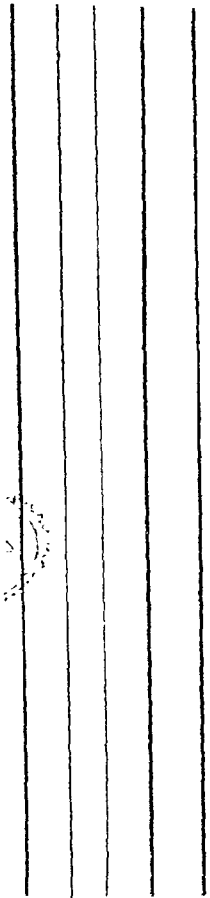
# भक्तामर

# BHAKTAMAR

# भक्तामर स्तोत्रम्

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१

अन्वयार्थ :

भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणाम्—भक्तिमान देवों के झुके हुए मुकुटों की जो मणियां हैं, उनकी प्रभा को

| | | |
|---|---|---|
| उद्योतकम् | — | प्रकाशित करने वाले |
| दलितपापतमो वितानम् | — | पाप रूपी अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाले |
| भवजले | — | संसार समुद्र में |
| पततां | — | पड़ते हुए |
| जनानाम् | — | मनुष्यों को |
| युगादौ | — | युग के अर्थात् चौथे काल के आदि में |
| आलम्वनम् | — | सहारा देने वाले |
| जिन पादयुगं | — | श्री जिनदेव के चरण युगलों को |
| सम्यक् | — | भलीभांति |
| प्रणम्य | — | प्रणाम करके |

## भक्तामर

( १ )

अर्थ–भक्तिमान् देवों के झुके हुए मुकुटों की मणियों की प्रभा को प्रकाशित करने वाले, पाप रूपी अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाले और संसार समुद्र में गिरते हुए मनुष्यों को युग की अर्थात् चतुर्थ काल की आदि में सहारा देने वाले श्री जिनदेव के चरण युगलों को भलीभांति नमस्कार करके ।

---

## BHAKTAMAR

( 1 )

After duly and respectfully bowing at the pair of feet of the great Almighty (the conqueror), the feet, which illuminate the lustre of the gems-studded in the diadems of the devout gods having bent down in obeisance to Lord Adinath; the feet which are the destroyers of the canopy of the Sins and are the Isle of rescue to the persons falling in the ocean of the World in this quadrant period.

य: संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २

(युग्मम्)

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| सकलवाङ्मय तत्व बोधात् | — | सम्पूर्ण द्वादशांग रूप जिनवाणी का परमार्थ जानने से |
| उद्भूतबुद्धि पटुभि: | — | उत्पन्न हुई बुद्धि से प्रवीण बने |
| सुरलोकनाथैः | — | देवलोक के स्वामी इन्द्रों ने |
| जगत्त्रिय चित्तहरै | — | तीनों जगत के चित्त को हरण करने वाले |
| उदारै : | — | महान् |
| स्तोत्रै | — | स्तोत्रों के द्वारा |
| य: संस्तुत: | — | जिसकी स्तुति की है |
| तं प्रथमं जिनेन्द्रम् | — | उन प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव का |
| किल | — | निश्चय से |
| अहमपि | — | मैं भी |
| स्तोष्ये | — | स्तवन करूंगा |

( २ )

अर्थ-सम्पूर्ण द्वादशांग रूप जिनवाणी का रहस्य जानने से उत्पन्न हुई (जो बुद्धि उससे प्रवीण) ऐसे देवलोक के स्वामी इन्द्रों ने तीन लोक के चित्त को हरण करने वाले महान् स्तोत्रों के द्वारा जिनकी स्तुति की उन प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी का मैं सचमुच स्तवन करता हूँ.

भावार्थ-जिनकी स्तुति द्वादशांग वाणी के ज्ञाता इन्द्रों ने बड़े-बड़े विशाल स्तोत्रों के द्वारा की है उन्हीं आदिनाथ भगवान का मैं सचमुच स्तोत्र प्रारम्भ करता हूँ.

( 2 )

(It is strange that) I should conduct the Eulogy of the first Jinendra (the biggest conqueror) who has been hymned and worshipped in magnificent encomiums and thus magnetising the hearts of the people of the three worlds, composed by the Lords of Gods talented in grasping the essence of the sacred scriptures.

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| विबुधार्चितपादपीठ ! | — | देवों ने जिसके चरण पृष्ठ की पूजा वन्दना की है ऐसे हे जिनेन्द्र ! |
| बुद्ध्या विना | — | बुद्धि के बिना |
| अपि | — | भी |
| विगतत्रपः | — | लज्जा रहित (संकोच रहित) होकर |
| अहम् | — | मैं |
| स्तोतुम् | — | आपकी स्तुति करने के लिये |
| समुद्यतमतिः | — | उद्यतमति (तत्पर) हुआ हूँ (सो ठीक ही है । क्योंकि) |
| बालं विहाय | — | बालक के सिवाय |
| अन्यः | — | अन्य |
| क | — | कौन |
| जनः | — | मनुष्य (ऐसा है जो) |
| जलसंस्थितम् | — | जल में स्थित (दिखाई देने वाले) |
| इन्दु बिम्बम् | — | चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को |
| सहसा | — | एकाएक |
| ग्रहीतुम् | — | ग्रहण करने (पकड़ने) के लिए (की) |
| इच्छति | — | इच्छा करता है |

( ३ )

अर्थ–देवताओं ने जिसके सिंहासन की पूजा की है; ऐसे हे जिनेन्द्र ! बुद्धि के बिना ही लज्जा रहित होकर मैं आपका स्तवन करने को उद्यत हुआ हूँ अर्थात् तैयार हुआ हूँ (सो ठीक है), क्योंकि बालक के सिवाय ऐसा अन्य कौन मनुष्य है जो जल में दिखाई देने वाले चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को एकाएक पकड़ने की इच्छा करता है ?

भावार्थ–जैसे मूर्ख बालक जल में पड़ी हुई चन्द्रमा की छाया को पकड़ना चाहता है उसी प्रकार मैं भी आपका स्तोत्र करने के लिए तैयार हुआ हूँ ।

( 3 )

Due to immodesty and impudence, I though deficient in intellect, am intent on praising your foot stool (out of courtesy, it means feet) which has been already worshipped by the celestial gods. Who else but a child wants to catch hurriedly the image of the moon reflected in water ?

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम्
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| गुण समुद्र ! | — | हे गुणों के समुद्र ! |
| ते | — | तुम्हारे |
| शशांक कान्तान् | — | चन्द्रमा की कांति की तरह उज्ज्वल |
| गुणान् | — | गुणों को |
| वक्तुम् | — | कहने के लिये |
| बुद्ध्या | — | बुद्धि से |
| सुरगुरुप्रतिम: अपि | — | देवताओं के गुरु बृहस्पति के समान भी |
| क: | — | कौन (पुरुष ऐसा है जो) |
| क्षम: | — | समर्थ हो सकता है (क्योंकि) |
| कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम् | — | प्रलयकाल की आंधी से उछलते हुए मगरों से युक्त (भरे हुए) |
| अम्बुनिधिम् | — | समुद्र को |
| भुजाभ्याम् | — | भुजाओं से |
| तरीतुम् | — | तैरने में |
| को वा | — | कौन पुरुष |
| अलम् | — | समर्थ हो सकता है ? (कोई भी नहीं) |

( ४ )

अर्थ-हे गुणों के समुद्र ! तुम्हारे चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्ज्वल गुणों को कहने के लिए बुद्धि में वृहस्पति के समान भी कौन पुरुष (ऐसा है जो) समर्थ हो ? (क्योंकि) प्रलय काल की आंधी से उछलते हुए मगर घड़ियाल जिसमें हो ऐसे समुद्र को भुजाओं से तैरने को कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

भावार्थ-जैसे प्रलयकाल के भयानक दुस्तर समुद्र को कोई भी भुजाओं से नहीं तैर सकता है । उसी प्रकार मैं भी आपके गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ ।

---

( 4 )

O yee ! the ocean of virtues ! who can, be he in intelligence, like the preceptor of celestial gods, describe thy bright merits glittering like the lustre of the moon ? who can swim with his arms the tumultuous ocean abounding in crocodiles and alligators and agitated by the tempest of the world's final Annihilation.

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| मुनीश ! | — | हे मुनियों के ईश्वर ! |
| तथापि | — | तो भी |
| तव भक्तिवशात् | — | आपकी भक्ति से प्रेरित होकर |
| विगतशक्ति | — | शक्ति (सामर्थ्य) रहित |
| अपि | — | भी |
| सोऽहं | — | वह (सामर्थ्य रहित) मैं |
| स्तवं कर्तुं | — | आपकी स्तुति (प्रार्थना) करने को |
| प्रवृत्त | — | प्रवृत्त हुआ हूँ (सो ठीक ही है । क्योंकि) |
| मृगः | — | हरिण |
| प्रीत्या | — | प्रीति के वश से |
| आत्मवीर्यम् | — | अपने पराक्रम (सामर्थ्य) को |
| अविचार्य | — | विना विचारे ही |
| निजशिशोः | — | अपने बच्चे (शिशु) की |
| परिपालनार्थ | — | रक्षा के अर्थ |
| किं | — | क्या |
| मृगेन्द्रम् | — | सिंह को |
| न अभ्येति | — | (क्या) नहीं प्राप्त होता है ? अर्थात् उसके सम्मुख लड़ने के लिए (क्या) खड़ा नहीं हो जाता है ? |

( ५ )

**अर्थ**–हे मुनियों में श्रेष्ठ ! (मैं स्तोत्र करने में असमर्थ हूँ) तो भी आपकी भक्ति के वश से शक्ति रहित (होने पर) भी मैं बुद्धि हीन आपका स्तवन करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, (सो ठीक है) क्योंकि हरिणी प्रीति के वश से अपने पराक्रम को बिना विचारे ही बच्चे की रक्षार्थ क्या सिंह के सम्मुख सामना करने के लिए नहीं दौड़ती है ?

**भावार्थ**–जैसे हरिणी अपने बच्चे को सिंह के पंजे में फंसा देख कर उसकी प्रीति के वश से यद्यपि वह सिंह को नहीं जीत सकती है तो भी सामने लड़ने को दौड़ती है। उसी प्रकार यद्यपि मुझ में शक्ति नहीं है तो भी भक्ति के वश से आपका स्तोत्र करने के लिए तत्पर होता हूँ अर्थात् इस स्तोत्र के करने में आपकी भक्ति ही कारण है, मेरी शक्ति या प्रतिभा नहीं।

( 5 )

O ye supreme Sage ! though I am deficient in calibre and devoid of intellect, yet prompted by my devotion to you, I undertake to compose this Encomium. Does not a doe impelled by the affection for her fawn oppose the lion to deliver her young ones from his clutches not considering her prowess ?

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ॥६

---

| | | |
|---|---|---|
| अल्पश्रुतं | — | शास्त्र ज्ञान की अल्पता वाले |
| श्रुतवतां | — | शास्त्रज्ञ पुरुषों के सामने |
| परिहासधामः | — | हंसी के पात्र, ऐसे |
| माम् | — | मुझको |
| त्वद्भक्ति | — | तुम्हारी भक्ति |
| एव | — | ही |
| बलात् | — | बलपूर्वक |
| मुखरीकुरुते | — | वाचाल करती है (क्योंकि) |
| कोकिलः | — | कोयल |
| किल | — | निश्चय से |
| मधौ | — | वसन्त ऋतु में |
| यत् | — | जो |
| मधुरं विरौति | — | मधुर शब्द करती है |
| तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैक हेतुः | — | उसमें आम्र वृक्षों के सुन्दर मौर का समूह ही एक कारण है। |

( ६ )

**अर्थ**–शास्त्र के ज्ञाता पुरुषों के हंसी के पात्र मुझ अल्प-ज्ञानी को तुम्हारी भक्ति ही बलपूर्वक वाचाल करती है, क्योंकि कोयल वास्तव में बसन्त ऋतु में जो मधुर शब्द करती है सो उसमें सुन्दर आम्र वृक्षों के मौर का समूह ही एक कारण है।

**भावार्थ**–कोयल में यदि स्वयं बोलने की शक्ति होती तो वह बसन्त ऋतु के सिवाय दूसरी ऋतु में बोलती, परन्तु जब बसन्त में आमों के मौर आते हैं तब ही वह मीठी वाणी बोलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि उसके बोलने में मौर ही कारण है। इसी प्रकार मुझ में स्वयं शक्ति नहीं हैं किन्तु आपकी भक्ति मुझे स्तोत्र करने के लिए चंचल करती है। अतः इस स्तोत्र की रचना में आपकी भक्ति ही एक कारण है।

---

( 6 )

My devotion to you alone impels me to become garrulous in this panegyric-me, a man of petty knowledge and hence an object of ridicule in the society of persons learned in the lore of spiritual science; just as the cluster of the mango sprouts incites the cuckoo to coo the melodious tune in the spring season.

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम् ॥७

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| आक्रान्तलोकम् | — | (जिसने) लोक को ढ़क लिया है (और जो) |
| अलिनीलम् | — | भ्रमर के समान काला है, ऐसे |
| शार्वरम् | — | रात्रि का |
| अशेषम् | — | सम्पूर्ण |
| अन्धकारम् | — | अन्धकार |
| आशु | — | शीघ्रता से |
| सूर्यांशुभिन्नम् | — | जैसे सूर्य की किरणों से नष्ट होता है (उसी प्रकार हे भगवन् !) |
| त्वत्संस्तवेन | — | तुम्हारी स्तुति (प्रार्थना) करने से |
| शरीरभाजाम् | — | जीवधारियों का |
| भवसन्ततिसन्निबद्धम् | — | जन्म मरण रूप संसार परम्परा से बंधा हुआ |
| पापम् | — | पाप |
| क्षणात् | — | क्षण भर में |
| क्षयम् | — | नाश को |
| उपैति | — | प्राप्त हो जाता है । |

अर्थ-समस्त लोक में फैले हुए तथा भ्रमर के समान काले रंग वाले सम्पूर्ण अन्धकार को शीघ्रता से जैसे सूर्य की किरणें नष्ट कर देती हैं। उसी प्रकार हे भगवन् ! आपके स्तवन से देह धारियों का (जन्म, जरा, मरण रूप) संसार परम्परा से बंधा पाप क्षण भर में नाश हो जाता है।

भावार्थ-जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट कर देता है उसी प्रकार आपके स्तोत्र से जीवों के पाप क्षय हो जाते हैं।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८

अन्वयार्थ

| | | |
|---|---|---|
| नाथ ! | — | हे नाथ ! |
| इति मत्वा | — | इस प्रकार पाप को नष्ट करने वाला मान कर |
| तनुधिया अपि मया | — | थोड़ी बुद्धि वाले भी मेरे द्वारा |
| इदम् | — | यह |
| तव | — | तुम्हारा |
| संस्तवनम् | — | स्तोत्र |
| आरभ्यते | — | आरम्भ किया जाता है, सो |
| तव | — | तुम्हारे |
| प्रभावात् | — | प्रभाव से |
| सताम् | — | सज्जन पुरुषों के |
| चेतः | — | चित्त को |
| हरिष्यति | — | हरण (आकर्षित) करेगा (जैसे) |
| नलिनीदलेषु | — | कमलिनी के पत्ते पर |
| उदबिन्दुः | — | पानी का बिन्दु |
| ननु | — | निश्चय से |
| मुक्ताफलद्युतिम् | — | मुक्ताफल (मोती) की शोभा को |
| उपैति | — | प्राप्त होता है । |

( ८ )

अर्थ–हे स्वामी ! इस प्रकार पाप का नाश करने वाले मान कर थोड़ी-सी बुद्धि होने पर भी मेरे द्वारा यह आपका स्तोत्र आरम्भ किया जाता है। आपके प्रभाव से सज्जन पुरुषों के चित्त को हरण करेगा। जैसे कमलिनी के पत्तों पर पानी का विन्दु निश्चय से मुक्ताफल की शोभा को प्राप्त होता है।

भावार्थ–जैसे कमलिनी के पत्तों पर साधारण जल के विंदु भी उन पत्तों के प्रभाव से मोती के समान जान पड़ते हैं, उसी प्रकार यह स्तोत्र यद्यपि अच्छा नहीं है, तो भी आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को अवश्य हरेगा अर्थात् उत्कृष्ट काव्यों की श्रेणी में गिना जावेगा।

( 8 )

O Lord ! I assume that this panegyric though composed by me—a man of scanty intellect, will under thy influence captivate the minds of noble persons. Indeed the drops of water in contact with the lotus-leaves do obtain the splendour of pearls.

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभांजि ॥९

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| सहस्र किरणः | — | (यद्यपि) सूर्य |
| दूरे | — | दूर ही रहता है (तथापि) |
| प्रभा एव | — | उसकी प्रभा ही |
| पद्माकरेषु | — | तालावों में |
| जलजानि | — | कमलों को |
| विकासभाञ्जि | — | प्रकाशमान |
| कुरुते | — | कर देती है (उसी प्रकार हे जिनेन्द्र !) |
| अस्तसमस्तदोषम् | — | अस्त हो गए हैं समस्त दोष जिसके वैसा निर्दोष |
| तव | — | तुम्हारा |
| स्तवनं दूरे आस्ताम् | — | स्तुति, स्तोत्र, प्रार्थना तो दूर ही रहे |
| त्वत्संकथा अपि | — | तुम्हारी चर्चा या तुम्हारी उत्तम कथा ही |
| जगताम् | — | जगत के जीवों के |
| दुरितानि | — | पापों को |
| हन्ति | — | नाश कर देती है। |

अर्थ–जैसे सूर्य के दूर रहने पर भी उसकी प्रभा ही सरोवरों में कमलों को विकसित कर देती है। उसी प्रकार हे जिनेन्द्र ! समस्त दोष रहित आपका स्तवन तो दूर रहे आपकी चर्चा ही (इस भव तथा पूर्व भव सम्बन्धी) उत्तम कथा ही जगत के जीवों के पापों को नाश कर देती है।

भावार्थ-सूर्योदय के पहले ही जो प्रभा फैलती है उससे ही (अर्थात् अरुणोदय से ही) जब कमल खिल उठते हैं तब सूर्य की प्रभा से कमल खिलेंगे इसमें तो कहना ही क्या है। इसी प्रकार आपकी चर्चा मात्र से ही जब पाप नष्ट हो जाते हैं तब आपके स्तोत्र से तो होवेंगे ही, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। तात्पर्य यह है कि आपका यह स्तोत्र पापों का नाश करने वाला है।

---

( 9 )

Although the sun is far away, yet through its radiance alone blossoms the lotuses in the ponds. Likewise what to say the Encomium of you free of all defect, the narration of thy doings will itself prove destructive of the evils of the Living Beings.

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| भुवन भूषण भूतनाथ ! | — | हे जगत् के भूषण रूप भगवन् ! |
| भुवि | — | संसार में |
| भूतैःगुणै | — | सत्य तथा समीचीन गुणों से |
| भवन्तम् | — | आपको |
| अभिष्टुवन्तः | — | स्तवन करने वाले पुरुष |
| भवतः | — | आपके ही |
| तुल्यः | — | समान |
| भवन्ति | — | हो जाते है (इसमें) |
| अति अद्भुतं न | — | अधिक आश्चर्य नहीं है |
| ननु | — | क्योंकि |
| नाथ | — | हे सब जीवों के नाथ ! |
| यः | — | जो कोई स्वामी |
| इह | — | इस लोक में |
| आश्रितम् | — | अपने आश्रित पुरुष को |
| भूत्या | — | विभूति से |
| आत्मसम | — | अपने समान |
| न करोति | — | नहीं करता है |
| तेन | — | उस स्वामी से |
| किं वा | — | क्या लाभ ? |

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| भुवन भूषण भूतनाथ ! | — | हे जगत् के भूषण रूप भगवन् ! |
| भुवि | — | संसार में |
| भूतैःगुणै | — | सत्य तथा समीचीन गुणों से |
| भवन्तम् | — | आपको |
| अभिष्टुवन्तः | — | स्तवन करने वाले पुरुष |
| भवतः | — | आपके ही |
| तुल्यः | — | समान |
| भवन्ति | — | हो जाते हैं (इसमें) |
| अति अद्भुतं न | — | अधिक आश्चर्य नहीं है |
| ननु | — | क्योंकि |
| नाथ | — | हे सब जीवों के नाथ ! |
| यः | — | जो कोई स्वामी |
| इह | — | इस लोक में |
| आश्रितम् | — | अपने आश्रित पुरुष को |
| भूत्या | — | विभूति से |
| आत्मसम | — | अपने समान |
| न करोति | — | नहीं करता है |
| तेन | — | उस स्वामी से |
| किं वा | — | क्या लाभ ? |

**अर्थ**–हे भुवन के अलंकार स्वरूप तथा जीवों के स्वामी ! संसार में सत्य तथा समीचीन गुणों से आपको स्तवन करने वाले पुरुष आपके ही समान हो जाते हैं, सो इसमें वहुत आश्चर्य क्या है ? क्योंकि जो स्वामी इस लोक में अपने आश्रित पुरुष को विभूति करके अपने समान नहीं करता है उस स्वामी से क्या लाभ ?

**भावार्थ**–हे भगवान् ! जिस प्रकार उदार स्वामी का सेवक कालान्तर में धनादि से सहायता पाकर के अपने स्वामी के समान धनवान हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी आपका स्तवन करके आपके समान तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन कर सकता हूँ ।

( 10 )

O supremely splendid personality of the world and the protector of the living beings ! it is not surprising that those who eulogise you, the abode of true virtues, become equal to you. What is the use of a master if he does not make his dependents equal to him in wealth and dignity.

दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः,
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११

अन्वयार्थ :

(हे भगवन् !)

| | | |
|---|---|---|
| अनिमेषविलोकनीयम् | — | निर्निमेष (अर्थात् निमीलन उन्मीलन-रहित नेत्रों से सदा) देखने योग्य |
| भवन्तम् | — | आपको |
| दृष्ट्वा | — | देख करके |
| जनस्य | — | मनुष्यों के |
| चक्षुः | — | नेत्र |
| अन्यत्र | — | दूसरों में अर्थात् अन्य देवों में |
| तोषम् | — | सन्तोष को |
| न उपयाति | — | नहीं प्राप्त होते हैं[1] (सो ठीक ही है क्योंकि) |
| शशिकर द्युति दुग्ध सिन्धो | — | चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल (शोभा जिसकी, ऐसे) क्षीर समुद्र के |
| पयः | — | जल को |
| पीत्वा | — | पीकर के |
| कः | — | ऐसा कौन पुरुष है, जो |
| जलनिधेः | — | समुद्र के |
| क्षारं जलम् | — | खारे पानी को |
| असितुम् | — | पीने को |
| इच्छेत् | — | इच्छा करता है। |

---

१. यद्यपि 'चक्षु' यह और 'उपयाति' क्रिया दोनों एक वचन है परन्तु जाति की अपेक्षा होने से यहां बहुवचन में किया गया है।

**अर्थ**-अनमेष नेत्रों से सदा देखने योग्य आपको देखकर के मनुष्यों के नेत्र अन्य देवों में सन्तोष को नहीं प्राप्त होते हैं। सो ठीक ही है। कारण चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल है शोभा जिस की ऐसे क्षीर समुद्र के जल को पीकर के ऐसा कौन पुरुष है जो समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा करता हो ?

**भावार्थ**-जैसे क्षीर समुद्र के जल को पीने वाला फिर खारा पानी पीने की इच्छा नहीं करता है उसी प्रकार जो आपके दर्शन कर लेता है उसे फिर दूसरे देवों को देखने से सन्तोष नहीं होता।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| त्रिभुवनैक ललाम[1] भूत! | — | हे तीन लोक के एक मात्र शिरा भूषण ! |
| यैः | — | जिन |
| शान्त राग रुचिभिः | — | शान्त भावों की कान्ति वाले |
| परमाणुभिः | — | परमाणुओं से |
| त्वम् | — | तुम |
| निर्मापितः | — | बनाये गये हो |
| खलु | — | निश्चय (करके) ही |
| ते | — | वे |
| अणवः | — | परमाणु |
| अपि | — | भी |
| तावन्त एव | — | उतने ही थे |
| यत् | — | क्योंकि |
| ते समानम् | — | तुम्हारे समान |
| पृथिव्यां | — | धरती पर |
| अपरम् | — | दूसरा |
| रूपम् | — | रूप |
| नहि | — | नहीं |
| अस्ति | — | है । |

१. 'शिरः पुरोन्यस्त मस्तका भरणं ललाम मुच्यते' सिर के आगे मस्तक के आभरण को ललाम कहते हैं ।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिंबं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम् ॥१३

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| (हे नाथ !) | | |
| सुरनरोरगनेत्रहारि | — | देव, मनुष्य और नागों के नेत्रों की हरण करने वाला तथा |
| निःशेष निर्जित जग त्त्रितयो पमानम् | — | त्रिलोकवर्त्ती सम्पूर्ण उपमान को जीतने वाला |
| क्व | — | कहां तो |
| ते | — | तुम्हारा |
| वक्त्रम् | — | मुख और |
| क्व | — | कहां |
| निशाकरस्य | — | चन्द्रमा का |
| कलङ्कमलिनम् | — | कलंक से मलिन रहने वाला |
| बिम्बम् | — | मण्डल |
| यद् | — | जो कि |
| वासरे | — | दिन में |
| पाण्डु पलाश कल्पम् | — | पलाश यानि ढाक के पत्ते के समान सफ़ेद |
| भवति | — | हो जाता है । |

( १३ )

**अर्थ**–देव, मनुष्य, और नागों के नेत्र हरण करने वाला तथा जीती है तीन लोक की (कमल, चन्द्रमा, दर्पण आदि) समस्त उपमाएँ जिसने, ऐसा कहां तो आप का मुंह और कहां चन्द्रमा का कलंक से मलिन रहने वाला मुख मण्डल कि जो दिन में पलाश के पत्र वत् सफेद होता है।

**भावार्थ**–आप के सदा प्रकाशमान निष्कलंक मुख को चन्द्रमा की उपमा नहीं दी जा सकती है, कारण चन्द्र कलंकी और दिन को ढ़ाक के पत्र वत् सफेद और प्रभावहीन हो जाता है।

---

( 13 )

O Ye Lord ! thy splendid face which has focussed the eyes of gods, men and serpents, surpasses all the objects of comparison in this three fold world. How can it be compared to the disc of the moon which is stained by dark spots and turns pale in the day like leaves of Butea-frondosa (Palash).

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप,
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथमेकम्,
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥१४

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| त्रि जगदीश्वर ! | — | हे तीनों जगत् के ईश्वर ! |
| तव | — | तुम्हारे |
| सम्पूर्ण मण्डल शशाङ्क-<br>कला कलाप शुभ्रां गुणा: | — | पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल की कलाओं सरीखे उज्ज्वल गुण |
| त्रिभुवनम् | — | तीन भुवन को |
| लङ्घयन्ति | — | उल्लंघन करते हैं, अर्थात् तीनों लोकों में व्याप्त हैं |
| ये | — | जो पुरुष |
| एक | — | एक, अद्वितीय |
| नाथम् | — | तीनों लोकों के नाथ तुम्हारा |
| संश्रिता | — | आश्रय में रहे हैं |
| तान् | — | उन्हें |
| यथेष्टम् | — | स्वेच्छानुसार |
| संचरतः | — | इधर उधर घूमने से |
| क: | — | कौन पुरुष |
| निवारयति | — | निवारण कर सकता है—रोक सकता है अर्थात् कोई भी नहीं रोक सकता । |

( १४ )

**अर्थ**–हे त्रिलोक के स्वामी ! आपके पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल की कलाओं के समान उज्जवल गुण तीन लोक को उलंघन करते हैं अर्थात् तीनों लोकों में व्याप्त हैं। क्योंकि जो गुण एक अर्थात् अद्वितीय स्वामी के आश्रय में रहे हुए हैं उन्हें स्वेच्छानुसार सब जगह विचरण करने से कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

**भावार्थ**–जिन उत्तम गुणों ने आपका आश्रय लिया है वे गुण जहाँ तहाँ इच्छा पूर्वक गमन करते हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सकता है क्योंकि वे आप जैसे तीन लोक के नाथ के आश्रित हैं और इसी कारण अर्थात् उन गुणों के सर्वत्र विचरने से तीन लोक उन्हीं से व्याप्त हो रहा है।

---

( 14 )

O Lord ! Your illuminating virtues as bright as the silvery moon outstep the three worlds. How can those who have been patronised by the singular and matchless Almighty of the three Worlds be impeded by any body in their free movement.

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि,
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन,
किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५

अन्वयार्थ :

(हे प्रभो ! )

| | | |
|---|---|---|
| यदि | — | यदि |
| त्रि दशांगनाभिः | — | देवांगनाओं से |
| ते | — | तुम्हारा |
| मनः | — | मन |
| मनाक् अपि | — | किंचित् भी |
| विकार मार्गम् | — | विकार मार्ग को |
| ननीतम् | — | नहीं प्राप्त हुआ तो |
| अत्र | — | इसमें |
| किम् | — | क्या |
| चित्रम् | — | आश्चर्य है |
| किम् | — | क्या |
| कदाचित् | — | कभी |
| चलिताचलेन | — | कम्पित किये हैं पर्वत जिसने, ऐसे |
| कल्पान्त काल मरुता | — | प्रलयकाल के पवन से |
| मन्दराद्रि शिखरम् | — | सुमेरु पर्वत का शिखर |
| चलितम् | — | चलायमान हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता । |

अर्थ-यदि देवाङ्गनाओं के द्वारा आपका चित्त किंचित् मात्र भी विकार ग्रस्त नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है? क्या कभी कम्पित किये हैं पर्वत जिसने ऐसे प्रलय काल के पवन से सुमेरु पर्वत का शिखर चलायमान हो सकता है? कभी नहीं।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ।।१६

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| नाथ ! | — | हे नाथ ! |
| त्वम् | — | तुम |
| निर्धूमवर्तिः | — | धूम्र तथा बत्ती रहित |
| अपवर्जित तैल पूरः | — | तैल के पूर रहित, (और जो) |
| चलिताचलानम् | — | पर्वतों को चलायमान करने वाले |
| मरुताम् | — | पवन के (लिए) |
| जातु न गम्यः | — | भी गम्य नहीं है, ऐसे |
| जगत्प्रकाशः | — | जगत को प्रकाशित करने वाले |
| अपरः | — | अद्वितीय, विलक्षण |
| दीपः | — | दीपक |
| असि | — | हो (क्योंकि आप) |
| इदम् | — | इस |
| कृत्स्नम् | — | समस्त |
| जगत्त्रयम् | — | त्रिलोक को |
| प्रकटीकरोषि | — | प्रकट करते हैं । |

**अर्थ**-हे नाथ ! आप धूप तथा बत्ती रहित, तैल के पूर रहित और जो पर्वतों को चलायमान करने वाले पवन को कदाचित् भी गम्य नहीं है ऐसे जगत को प्रकाशित करने वाले अद्वितीय (विलक्षण) दीपक हो। क्योंकि आप इस समस्त (नव तत्त्व, नव पदार्थ रूप) तीन जगत को प्रकट करते हो।

**भावार्थ**-संसार में जो दीपक दिखाई देते हैं उनमें धुंआ और बत्ती होती है किन्तु आप में द्वेष रूपी धुंआ और काम की दश अवस्था रूपी बत्ती नहीं है। दीपकों में तेल होता है, आप में तेल अर्थात् स्नेह राग नहीं है। दीपक जरा सी हवा के झोंके से बुझ सकता है, आप प्रलयकाल की हवा से भी चलित नहीं होते हो, दीपक एक घर को ही प्रकाशित करता है किन्तु आप तीनों ही लोकों के सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करते हो। इस प्रकार आप जगत को प्रकाशित करने वाले एक अपूर्व दीपक हो।

---

( 16 )

O Lord ! you are the supernatural lamp of rare splendour illuminating the entire Universe (diffusing right knowledge) with no smoke (hatred), no wick (sensual desires), no oil (attachment) and unaffected by the storms (heretical one sided dogmatisms).

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति ।
नांभोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ।।१७

अन्वयार्थ

| | | |
|---|---|---|
| मुनीन्द्र | — | हे मुनीन्द्र ! (जो) |
| न कदाचित् | — | न तो कभी |
| अस्तम् | — | अस्त को |
| उपयाति | — | प्राप्त होते हैं |
| न राहुगम्य | — | न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं (और) |
| न | — | न |
| अम्भोधरोदरनिरुद्ध-महाप्रभावः | — | वादलों में से ही जिसका महाप्रताप रुकता है (और) |
| सहसा | — | सहज ही |
| जगन्ति | — | तीनों जगत को |
| युगपत् | — | एक समय में |
| स्पष्टीकरोषि | — | प्रकाशित करते हैं (ऐसे आप) |
| लोके | — | संसार में |
| सूर्यातिशायि महिमा असि | — | सूर्य की महिमा को भी उल्लंघन करने वाली महिमा धारण करने वाले हैं । |

**अर्थ**–आप न तो कभी अस्त को प्राप्त होते हो, न राहु के गम्य हो अर्थात् आपको राहु ग्रस नहीं सकता है और बादलों के उदर से ही आपका महा प्रताप रुक नहीं सकता है, आप एक समय में सहसा तीनों लोकों को प्रकट करते हो, इस प्रकार हे मुनीन्द्र ! लोक में आप सूर्य की महिमा को भी उल्लंघन करने वाली महिमा को धारण करने वाले हो ।

**भावार्थ**–सूर्य सन्ध्या को अस्त हो जाता है; आप सदैव प्रकाशित रहते हो । सूर्य एक जम्बूद्वीप को ही प्रकाशित करता है, आप तीनों जगत के सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करते हो । सूर्य को राहु का ग्रहण लगता है, आपको किसी प्रकार दुष्कृत प्राप्त नहीं होते । सूर्य के प्रताप को मेघ ढांक लेता है, आपका प्रताप मतिश्रुतावधिमनः पर्याय केवलादि ज्ञानावरणीय कर्मो के आवरण से रहित है । इस प्रकार हे मुनिनाथ ! आप सूर्य से भी बड़े सूर्य हो ।

---

( 17 )

As you never set, you are neither affected by the Rahu (eclipse), nor your supernatural grandeur ever overshadowed by the cumulous of the clouds and as you simultaneously enlighten the entire Universe, you, therefore, O Supreme Sage ! excel the grandeur of the Sun.

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं
गम्य न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥१८

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| यत् | — | जो |
| नित्योदयम् | — | सदा उदय रूप रहता है जो |
| दलित-मोह-महान्धकारम् | — | मोहरूपी महान् अन्धकार को नष्ट करता है |
| न राहुवदनस्य | — | न राहु के मुख में |
| गम्यम् | — | जाने वाला है (और) |
| न वारिदानाम् | — | न बादलों के गम्य है अर्थात् जिसे न राहु ग्रसता है और न बादल ढकते हैं (और जो) |
| जगत् | — | जगत् को |
| विद्योतयत् | — | प्रकाशित करता है (ऐसा हे भगवन् ! ) |
| तव | — | तुम्हारा |
| अनल्पकान्ति | — | अतिशय कान्ति वाला |
| मुखाब्जम् | — | मुख कमल |
| अपूर्व शशांक बिम्बम् | — | विलक्षण चन्द्रमा के बिम्ब रूप |
| विभ्राजते | — | शोभित होता है । |

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्नशालि वनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| नाथ | — | हे नाथ ! हे प्रभो ! |
| युष्मन्मुखेन्दु | — | आपके मुख रूपी चन्द्रमा से |
| दलितेषु तमः सु | — | अन्धकार के नष्ट हो जाने पर |
| शर्वरीषु | — | रात्रियों में |
| शशिना | — | चन्द्रमा से |
| वा | — | अथवा |
| अह्नि | — | दिन में |
| विवस्वता | — | सूर्य से |
| किम् | — | क्या ? (काम रह जाता है ? एवं) |
| जीवलोके | — | संसार में |
| निष्पन्नशालि | — | धान्य के खेतों के |
| वन शालिनि | | पक चुकने पर |
| जलभारनम्रैः | — | पानी के भार से झुके हुए |
| जलधरैः | — | बादलों का |
| कियत् कार्यम् | — | क्या काम रह जाता है ? अर्थात् कुछ नहीं । |

( १६ )

अर्थ-हे नाथ ! आपके मुख रूपी चन्द्रमा से अन्धकार नष्ट हो जाने पर रात्रियों में चन्द्रमा से अथवा दिन में सूर्य से क्या ? जीवलोक (देश) में धान्य के खेतों के पक चुकने पर पानी के भार से झुके हुए बादलों से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

भावार्थ-जिस प्रकार पके हुए धान्य वाले देश में बादलों का बरसना व्यर्थ है, क्योंकि उससे कीचड़ होने के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं होता, उसी प्रकार जहां आपके मुख रूपी चन्द्रमा से अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश हो चुका हो वहाँ रात्रि और दिन में चन्द्र सूर्य व्यर्थ ही शीत तथा आतप के करने वाले हैं ।

---

( 19 )

O Lord ! when your moon like face can destroy the darkness and illuminate the entire universe, there is no need of the Moon in the night and the Sun during the day, just as one wonders, of what use are the clouds heavy with the weight of water on the rice fields in the country after the Rice grains have ripened ?

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैव तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं
नैवं तु काचशकले[1] किरणाकुलेपि ॥२०

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| | | (हे नाथ !) |
| कृतावकाशम्[2] | — | अनन्त पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला |
| ज्ञानम् | — | केवल ज्ञान |
| यथा | — | जैसा |
| त्वयि | — | आपमें |
| विभाति | — | शोभायमान है |
| तथा | — | वैसा |
| हरिहरादिषु | — | हरिहर आदि |
| नायकेषु | — | नायकों में (देवों में) |
| नैवम् | — | कभी भी शोभा नहीं पाता है (ठीक ही है) क्योंकि |
| यथा | — | जिस प्रकार |
| तेजः | — | प्रकाश |
| स्फुरन्मणिषु | — | चमकती हुई मणियों में |
| महत्वम् | — | गौरव को |
| याति | — | प्राप्त होता है |
| एवं तु | — | वैसा तो |
| किरणा कुले अपि | — | किरणों से व्याप्त अर्थात् चमकते हुए भी |
| काच शकले | — | कांच के टुकड़े में शोभित नहीं होता । |

१. 'काचोद्भवेषु न तथैव विकासकत्वम्' ऐसा भी पाठ कतिपय ग्रन्थों में उपलब्ध है ।

२. अनन्त पर्यायादिके वस्तुनि कृतो विहतोऽवकाशः प्रकाशो येन तत्

( २० )

**अर्थ**–(अनन्त पर्यायात्मक पदार्थों को) प्रकाशित करने वाला (केवल) ज्ञान जैसा आप में शोभायमान है वैसा हरि-हरादिक नायकों में नहीं है, क्योंकि जैसा प्रकाश स्फुरायमान मणियों में गौरव को प्राप्त होता है वैसा किरणों से व्याप्त अर्थात् चमकते हुए भी कांच के टुकड़ों में नहीं होता ।

**भावार्थ**–जो प्रकाश मणियों में शोभित होता है वह कांच के टुकड़ों में नहीं हो सकता । इसी प्रकार जैसा स्व पर प्रकाशक ज्ञान आप में है वैसा अन्य विष्णु, महादेव आदि देवों में नहीं पाया जाता ।

---

( 20 )

Just as the magnificence of the light of the glittering jewels cannot be procured by a piece of glass even abounding in the rays of the Sun, so also omniscience (that throws light on the various phenomena of any subject) having found accomodation in you, glows with such splendour that it is not perceptible in other gods like Hari, Har etc.

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांतरेपि ॥२१

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| नाथ | — | हे नाथ ! (मैं) |
| हरिहरादय: दृष्टा | — | हरिहरादिक देवों का देखना |
| वरं मन्ये | — | अच्छा मानता हूँ |
| येषु दृष्टेषु | — | जिनके देखने पर |
| हृदयम् | — | हृदय |
| त्वयि एव | — | तुम में ही |
| तोषम् | — | सन्तोष को |
| एति | — | पाता है (परन्तु |
| भवता वीक्षितेन | — | आपके देखने से |
| किम् | — | क्या ? |
| येन | — | जिससे |
| भुवि | — | पृथ्वी में |
| अन्यः कश्चित् | — | अन्य कोई देव |
| भवान्तरे अपि | — | दूसरे जन्म में भी |
| मनः नहरति | — | मन हरण नहीं कर सकता । |

**अर्थ**–हे नाथ ! मैं हरिहरादिक देवों को देखना ही अच्छा मानता हूँ। जिनके देखने से हृदय आप में सन्तोष को प्राप्त करता है और आपको देखने से क्या ? जिससे कि पृथ्वी में कोई अन्य देव दूसरे जन्म में भी मन हरण नहीं कर सकते।

**भावार्थ**–हरिहरादिक देवों को देखना अच्छा है क्योंकि जब हम उन्हें देखते हैं और राग-द्वेषादि दोषों से भरे हुए पाते हैं तब आपमें हमको अतिशय सन्तोष प्राप्त होता है कारण यह है कि आप परम वीतराग, सर्व दोषों से रहित हैं, परन्तु आपको देखने से क्या ? कुछ नहीं। क्योंकि आपको देख लेने से फिर संसार का कोई भी देव मन को हर नहीं सकता। सारांश दूसरों को देखने से तो आप में सन्तोष होता है, यह लाभ है और आपको देखने से किसी भी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है (व्याज निन्दा और व्याज स्तुति अलंकार)।

( 21 )

O Lord ! I consider it better that I have seen Hari, Har and other gods first, because after seeing them my heart finds satisfaction in you. What good is it to look at you first ? After seeing you, there is no other god to captivate my heart on the Earth even in the future births.

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| (हे भगवन्) | | |
| स्त्रीणां शतानि | — | सैकड़ों स्त्रियां |
| शतशः | — | सैकड़ों |
| पुत्रान् | — | पुत्रों को |
| जनयन्ति | — | जन्म देती हैं (परन्तु) |
| अन्या | — | दूसरी कोई भी |
| जननी | — | माता |
| त्वदुपमम् | — | तुम्हारे जैसे |
| सुतम् | — | पुत्र को |
| न प्रसूता | — | जन्म नहीं दे पाई है (सो ठीक ही है क्योंकि) |
| सर्वा दिशः | — | सम्पूर्ण यानि आठों दिशाएं |
| भानि | — | नक्षत्रों को |
| दधति | — | धारण करती हैं (परन्तु) |
| स्फुरत् अंशुजालम् | — | दैदीप्यमान किरण समूह वाले |
| सहस्ररश्मिम् | — | सूर्य को (एक) |
| प्राची दिक् एव जनयति | — | पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है । |

( २२ )

अर्थ–स्त्रियों के सैकड़ों अर्थात् सैकड़ों स्त्रियां सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती है, परन्तु दूसरी माताएँ आपके समान पुत्रों को उत्पन्न नहीं कर सकती है। सो ठीक ही है। क्योंकि सम्पूर्ण अर्थात् आठों दिशाएँ नक्षत्रों को धारण करती है परन्तु देदीप्यमान हैं किरणों का समूह जिसका, ऐसे सूर्य को मात्र पूर्व दिशा ही उत्पन्न कर सकती है।

भावार्थ–जिस प्रकार मात्र पूर्व दिशा ही सूर्य को उत्पन्न कर सकती है। उसी प्रकार एक आपकी माता ही ऐसी है जिसने आप जैसे पुत्र को जन्म दिया है।

( 22 )

Hundreds of women give birth to sons hundreds of times. but no mother has given birth to a son like you. All the (eight) directions may hold the planets, but it is the East only which can produce the Sun with its cumulus of thousands of flashing rays.

**अर्थ**–हे मुनींद्र ! मुनिजन आपको परम पुरुष और अन्धकार के आगे सूर्य स्वरूप तथा निर्मल मानते हैं वे मुनि आप को ही भले प्रकार प्राप्त करके मृत्यु को जीतते हैं, इसलिए आपके अतिरिक्त दूसरा कोई कल्याणकारी अथवा निरुपद्रव, मोक्ष का मार्ग नहीं है।

**भावार्थ**–साधुजन आपको परम पुरुष मानते हैं, रागद्वेष रूपी मल से आप रहित हो, इस कारण निर्मल मानते हैं। मोह अन्धकार को आप नष्ट करते हो, इस कारण सूर्य के समान मानते हैं तथा आपके प्राप्त होने से मृत्यु नहीं आती, इस कारण मृत्युञ्जय मानते हैं तथा आपके अतिरिक्त कोई कल्याण-कारी मोक्ष का मार्ग नहीं है, इस कारण आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं।

---

( 23 )

O the best amongst the Sages ! the saints consider you the supreme being, the Sun in having over come the dark-ness of ignorance, also hold you pure purged of impurities. They overcome Death after having duly obtained you. There is no other beneficial way to Bliss, tranquility and salvation except through you.

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४

अन्वयार्थ :

(हे प्रभो !)

| | | |
|---|---|---|
| संत: | — | सन्त पुरुष |
| त्वाम् | — | तुमको |
| अव्ययम् | — | अक्षय |
| विभुम् | — | ज्ञान भाव से व्यापक |
| अचिन्त्यम् | — | चिन्तन में नहीं आने योग्य |
| असंख्यम् | — | असंख्य गुणों वाले |
| आद्यम् | — | आदि तीर्थङ्कर अथवा पंच परमेष्ठी में प्रथम |
| ब्रह्माणम् | — | ब्रह्मा—सकल कर्म रहित |
| ईश्वरम् | — | सर्व देवों के ईश्वर अथवा कृतकृत्य |
| अनन्तम् | — | अन्त रहित अथवा अनंत चतुष्टय सहित |
| अनंगकेतुम् | — | कामदेव को नाश करने के लिए केतु रूप |
| योगीश्वरम् | — | योगियों के प्रभु |
| विदित योगम् | — | यम आदि आठ प्रकार के योगों को जानने वाले |
| अनेकम् | — | गुण और पर्याय की अपेक्षा अनेक (और) |
| एकम् | — | जीव द्रव्य की अपेक्षा एक अथवा अद्वितीय |
| ज्ञान स्वरूपम् | — | केवल ज्ञान स्वरूप (और) |
| अमलम् | — | कर्म-मल रहित |
| प्रवदन्ति | — | कहते हैं । |

१. सदा स्थिर एक स्वभावी अनन्त ज्ञानादि स्वरूप ।

अर्थ-सन्त पुरुष आपको अक्षय, ऐश्वर्यवान् चिन्तवन में नहीं आने वाले असंख्य (गुण युक्त) आदि (तीर्थङ्कर) पवित्रात्मा (सकल कर्म रहित) सर्व देवों के ईश्वर अथवा कृत कृत्य; अनन्त (चतुष्टय सहित), कामदेव के नाश करने के लिए केतु स्वरूप, योगीश्वर, आठ प्रकार के योगों के ज्ञाता, (गुण पर्याय की अपेक्षा) अनेक रूप, (जीव द्रव्य की अपेक्षा) एक केवल ज्ञान स्वरूप और चिद्रूप कहते हैं।

भावार्थ-साधु पुरुष आपकी पृथक-पृथक तीनों गुणों की अपेक्षा अव्यय, अचिन्त्य, विभु आदि कह कर स्तुति करते हैं।

---

( 24 )

The holy sages regard you as imperishable, majestic (the abode of sterling merits , in comprehensible, innumerable, the first and Principal founder of Religion, the supreme self-immersed soul, Almighty of the three worlds (self-accomplished). Infinite (possessor of Infinite excellences), like a Ketu in vanquishing the Cupid (Deity of sexual passions), the chief amongst the meditators, conversant with you (the science of self absorption and cessation of corporeal activites),multifarious (with regards to merits and properties). singular (with regards to substance), Knowledge personified and free from all foreign matter (the dirt of mortal sins or Karmas).

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोमि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासि धीर शिवमार्गं विधेर्विधानात्,
व्यक्त त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽमि ॥२५

अन्वयार्थ :

(हे नाथ ! )

| | |
|---|---|
| विबुधार्चित बुद्धि बोधात् — | गणधरों ने अथवा देवों ने तुम्हारे केवल ज्ञान रूप बोध की महिमा गाई है, इस कारण |
| त्वम् एव — | तुम ही |
| बुद्धः — | बुद्ध हो |
| भुवनत्रय शंकर त्वात् — | तीन लोक के जीवों के लिए 'शं' अर्थात् सुख एवं कल्याण करने वाले होने से |
| त्वम् — | तुम (हो) |
| शंकर असि — | शंकर हो (और) |
| धीर ! — | हे धीर ! |
| शिव मार्ग विधेः — | रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग की विधि का |
| विधानात् — | विधान करने के कारण, तुम्हीं |
| धाता असि — | विधाता हो (इसी प्रकार) |
| भगवन् — | हे भगवन् ! |
| त्वम् एव — | तुम ही |
| व्यक्तम् — | स्पष्ट रूप से (पुरुषों में उत्तम होने के कारण) |
| पुरुषोत्तम — | पुरुषोत्तम याने नारायण |
| असि — | हो । |

अर्थ-गणधरों (देवों) ने आपके केवल ज्ञान के बोध की पूजा की है, इस कारण आप ही बुद्ध देव हो, तीन लोक के जीवों के सुख व कल्याणकारी हो; इसलिए आप ही शङ्कर हो। और हे धीर ! मोक्ष मार्ग की रत्न त्रय रूप विधि का विधान करने के कारण आप ही विधाता हो। इसी प्रकार हे भगवन् ! आप ही प्रगट रूप से पुरुषों में श्रेष्ठ होने के कारण पुरुषोत्तम अर्थात् नारायण हो।

**भावार्थ**-बौद्ध लोग जिसे मानते हैं वह क्षणिकवादी अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को अनित्य मानने वाला बुद्ध नहीं हो सकता, सच्चे बुद्ध तो आप ही हैं, क्योंकि आपके बुद्ध बोध की देवों ने पूजा की है। शैव लोग जिसे मानते हैं वह पृथ्वी का संहार करने वाला कपाल शङ्कर (महादेव) नहीं हो सकता। क्योंकि शङ्कर शब्द का अर्थ सुखकर्ता है। यह गुण आप में ही विद्यमान है इस कारण आप ही सच्चे शङ्कर हैं। रंभा के विलासों से जिसका तप नष्ट हो गया था वह सच्चा धाता (ब्रह्मा) नहीं, किन्तु आप हैं, क्योंकि आपने मोक्ष मार्ग की विधि संसार को बतलाई है और इसी प्रकार वैष्णवों का गोपियों का चीर हरण करने वाला तथा परवनितारक्त पुरुष पुरुषोत्तम (विष्णु, कृष्ण) नहीं हो सकता किन्तु उपर्युक्त गुणों के कारण आप ही सच्चे पुरुषोत्तम कहलाने योग्य हैं।

( 25 )

You are the Buddha as the other gods and learned persons (Gandhar etc.) have worshipped and commended your self-Awakening, (omniscience), you are the Shankar (Shiv) as you are the benefactor of the summum bonum (highest good) to the living beings of the three worlds. O Resolute one ! you are the providence (creator) as you have constituted the ordinations of the Path of salvation (codifier of the rules of emancipation). Thus O Lord, it is manifest that you being the best amongst the parsons are the only Purushottam.

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि-शोषणाय ॥२६

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| त्रिभुवनार्तिहराय | — | तीन लोकों की पीड़ा को हरण करने वाले |
| नाथ | — | हे नाथ ! |
| तुभ्यम् | — | तुमको |
| नमः | — | नमस्कार है |
| क्षिति तलामल भूषणाय | — | पृथ्वी तल के एक मात्र निर्मल भूषण |
| तुभ्यम् | — | तुमको |
| नम: | — | नमस्कार है |
| त्रिजगतः परमेश्वराय | — | तीनों जगत् के परम प्रभु |
| तुभ्यम् | — | तुम्हारे लिये |
| नमः | — | नमस्कार है (और) |
| भवादेधिशोषणाय | — | संसार समुद्र को सोखने वाले |
| जिन ! | — | हे जिन ! |
| तुभ्यम् | — | तुमको |
| नमः | — | नमस्कार है । |

( २६ )

अर्थ–हे नाथ ! तीन लोक की पीड़ा को हरण करने वाले ऐसे आपको नमस्कार है, पृथ्वी तल के निर्मल अलङ्कार स्वरूप आपको नमस्कार है, तीनों जगत् के प्रभु आपको नमस्कार है और हे जिन ! संसार समुद्र को शोषण करने वाले आपको नमस्कार है।

( 26 )

O Lord ! bow to you, the annihilator of the afflictions of the three worlds, how to you the purest and the most resplendent jewel on the face of Earth, bow to you the Paramount Almighty of the three worlds, O Jin (conqueror) I bow to you, the Absorbent of the ocean of Births and Deaths.

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै,-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नांतरेपि न कदाचिदपीक्षितोसि ॥२७

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| मुनीश | — | हे मुनियों के ईश्वर |
| यदि | — | यदि |
| अशेषैः | — | सम्पूर्ण |
| गुणैः | — | गुण |
| निरवकाशतया | — | सघनता से |
| त्वं संश्रितः | — | तुम में भरे हुए हैं (एवं) |
| उपात्त विविधा श्रय | | |
| जात गर्वैः | — | अनेक देव मनुजादिकों में आश्रय पाने से गर्विष्ठ, ऐसे |
| दोषैः | — | दोषों के द्वारा |
| स्वप्नान्तरे अपि | — | शयनावस्थागत स्वप्न में भी (तुम) |
| न ईक्षितः असि | — | नहीं देखे गए हो तो |
| अत्र | — | इसमें |
| को नाम विस्मयः | — | कौनसा आश्चर्य है ? कुछ नहीं। |

**अर्थ**–हे मुनियों में श्रेष्ठ ! यदि सम्पूर्ण गुणों ने सघनता से आपका भले प्रकार आश्रय ले लिया तथा प्राप्त किये हुए अनेकों के आश्रय से जिन्हें घमण्ड हो रहा है ऐसे दोषों ने स्वप्न प्रति स्वप्नावस्थाओं में भी किसी समय आपको नहीं देखा तो इनमें कौनसा आश्चर्य हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं ।

**भावार्थ**–संसार में जितने गुण थे, उन सभी ने तो आप में इस तरह से ठसाठस निवास कर लिया कि फिर कुछ भी स्थान शेष नहीं रहा, दोषों ने यह सोच कर घमण्ड से आपकी ओर कभी देखा तक नहीं कि जब संसार के बहुत से देवों ने हमें आश्रय दे रखा है तब हमको एक जिन देव की क्या परवाह है ? उनमें हमको स्थान नहीं मिला तो न सही । सारांश यह है कि आप में केवल गुणों का ही समूह है । दोषों का नाम भी नहीं है ।

---

( 27 )

O the Best amongst the sages ! it is not strange if all the virtues have taken shelter in you in densely clustered numbers and if the faults (vices)) being puffed up with pride in having attained the patronage of other deities did not cast a glance at you even in a dream.

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभातिरूपममल भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितान
विम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ।।२८

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| उच्चै: | — | ऊँचे |
| अशोक तरु संश्रितम | — | अशोक वृक्ष के द्वारा आश्रित और |
| उन्मयूखम् | — | ऊपर की ओर निकलती किरणों वाला |
| भवतो | — | आपका |
| नितान्तम् | — | अत्यन्त |
| अमलम् | — | निर्मल |
| रूपम् | — | रूप |
| पयोधर पार्श्ववर्ति | — | बादलों के पास रहे हुए |
| स्पष्टोल्लसत् किरणम् | — | व्यक्त रूप से चमकती किरणों वाले (तथा) |
| अस्ततमो वितानम् | — | अन्धकार के समूह का निरसन करने वाले |
| रवे: | — | सूर्य के |
| विम्बं इव | — | विम्ब की तरह |
| आभाति | — | शोभित होता है । |

( २८ )

अर्थ–ऊँचे अशोक वृक्ष के आश्रय में स्थिर और आपका देदीप्यमान तथा निर्मल रूप एवं व्यक्त रूप से ऊपर को फैली हैं किरणें जिसकी ऐसे तथा नष्ट किया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे वादलों के समीप रहने वाले सूर्य के विम्व के समान शोभित होता है।

**भावार्थ**–वादलों के निकट जैसे सूर्य का प्रतिविम्ब शोभा देता है उसी प्रकार अशोक वृक्ष के नीचे आपका निर्मल शरीर शोभायमान होता है। भगवान के आठ प्रतिहार्यो में से वह प्रथम प्रतिहार्य है।

---

( 28 )

O Lord while seated under the Ashoka tree (Jonasia ashoka) your resplendent and spotless body looks extra-ordinarily elegant, like the Sun in close proximity of the dense clouds radiating its brilliant rays and dispelling the expanse of darkness.

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिंबं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९

अन्वयार्थ

( हे भगवन् ! )

| | | |
|---|---|---|
| मणिमयूख शिखा विचित्रे | — | मणियों की किरण पंक्ति से चित्रित |
| सिंहासने | — | सिंहासन पर |
| तव | — | तुम्हारा |
| कनकावदातम् | — | सुवर्ण के समान शुभ्र |
| वपुः | — | शरीर |
| तुङ्गोदयाद्रि शिरसि | — | ऊंचे उदयाचल के शिखर पर |
| वियद्विलसदंशुलता | — | आकाश में शोभित हो रहे किरण रूपी |
| वितानम् | | लता मण्डप से घिरे |
| सहस्र रश्मे बिम्बं इव | — | सूर्य के बिम्ब की तरह |
| विभ्राजते | — | अतिशय शोभित होता है । |

( २६ )

अर्थ–मणियों की किरणों से चित्र विचित्र बने हुए सिंहासन पर आपका सुवर्ण के समान (मनोज्ञ) शरीर, ऊंचे उदयाचल के शिखर पर आकाश में शोभित हो रहा है किरण रूपी लताओं का चंदोवा जिसका, ऐसे सूर्य के बिम्ब के तरह शोभित है।

*भावार्थ–उदयाचल पर्वत के शिखर पर जैसे सूर्य बिम्ब* शोभा देता है उसी प्रकार मणि जटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभित होता है।

( 29 )

Your gold-like lovely body seated on the throne emitting multicoloured rays from the lustre of gems studded therein (throne) resembles the Sun with its radiant rays shining on the high peak of the Eastern mountain.

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तट सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०

अन्वयार्थ :

(हे जिनेन्द्र !)

| | | |
|---|---|---|
| कुन्दावदातचल चामर-चारु शोभम् | — | कुन्द के समान उज्ज्वल और चलते हुए चँवरों की शोभा से युक्त |
| कलधौत कान्तम् | — | सोने सरीखी कान्तिवाला |
| तव वपुः | — | तुम्हारा शरीर |
| उद्यच्छशाङ्क शुचि-निर्झर वारिधारम् | — | ऊपर उठते हुए चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा से युक्त |
| शात कौम्भम् | — | स्वर्णमय |
| सुर गिरेः | — | सुमेरु पर्वत के |
| उच्चै स्तटं इव | — | ऊंचे तटों की तरह |
| विभ्राजते | — | शोभित होता है । |

छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांत-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतपम्
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयस्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१

(हे नाथ ! आपके)

| | | |
|---|---|---|
| उच्चैः स्थितम् | — | ऊपर रहे हुए |
| शशाङ्क कान्तम् | — | चन्द्रमा के समान रमणीय (तथा) |
| स्थगित भानुकर प्रतापम् | — | सूर्य की किरणों के प्रताप को जिन्होंने रोक दिया है (एवं) |
| मुक्ताफल प्रकरजाल-विवृद्ध शोभम् | — | मोतियों की जाल से जिनकी शोभा बढ़ी हुई है ऐसे |
| छत्रत्रयम् | — | तीन छत्र |
| तव | — | तुम्हारे |
| त्रिजगतः | — | तीन जगत के |
| परमेश्वरत्वम् | — | परम ईश्वरपन को |
| प्रख्यापयत् | — | प्रकट करते हुए |
| विभाति | — | शोभित होते हैं । |

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभागस्
त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराज जयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति[1] ते यशसः प्रवादी[2] ॥३२

अन्वयार्थ :

(हे जिनेन्द्र ! )

| | | |
|---|---|---|
| गम्भीरताररवपूरित-दिग्विभागः | — | गम्भीर तथा ऊँचे शब्दों से दिशाओं को पूरित करने वाला |
| त्रैलोक्य लोक शुभ-सङ्गम भूति दक्षः | — | तीन लोक के लोगों को शुभ समागम की विभूति देने में चतुर, ऐसा (और) |
| ते | — | तुम्हारे |
| यशसः | — | यश का |
| प्रवादी | — | कहने वाला—प्रकट करने वाला |
| दुन्दुभिः | — | दुन्दुभि |
| खे | — | आकाश में |
| सद्धर्मराज जय घोषण-घोषकः सन् | — | सद्धर्मराज की अर्थात् तीर्थङ्कर देव की जयघोषणा को प्रकट करता हुआ |
| ध्वनति | — | बजता है । |

१. 'ध्वजति' भी पाठ है, जिसका अर्थ 'गमन करता है' है।
२. 'प्रवंदी' पाठ भी है, जिसका अर्थ 'बन्दीजन' है ।

( ३२ )

अर्थ-गम्भीर तथा ऊंचे शब्दों से दिशाओं को पूरित करने वाला; तीन लोक के लोगों को शुभ समागम की विभूति देने में चतुर ऐसा और आपके यश का कहने वाला (प्रकट करने वाला) दुन्दुभि आकाश में तीर्थंकर देव की जय घोषणा को प्रकट करता हुआ गमन करता है।

भावार्थ-समवसरण में जो दुन्दुभि बजती है वह यथार्थ में आपके यश की, गमन करते हुए आप की विजय घोषणा करती है (यह पांचवा प्रतिहार्य है)।

( 32 )

Filling all quarters with deep and loud sound the beat of kettle drums, skilled in announcing the grandeur of the auspicious society to the people of the three worlds, glorifying the victory of the soverign Master of Religion, is moving in the sky proclaiming your fame.

मंदार सुन्दर नमेरुसुपारिजात-
सतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।।३३

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| (हे नाथ ?) | | |
| गन्धोद बिन्दु शुभ-<br>मन्द मरुत्प्रपाता | — | गन्धोदक की बून्दो से मांगलिक और मन्द-मन्द वायु से पतन करने वाली |
| उद्धा | — | देदीप्यमान-प्रशंसनीय (और) |
| दिव्या | — | दिव्य[1] ऐसी |
| मन्दार सुन्दर नमेरु-<br>सुपारिजात सन्तानकादि<br>कुसुमोत्करवृष्टिः | — | मन्दार, सुन्दर, नमेरु, सुपारिजात, सन्तानक आदि नाम के कल्प वृक्षों के फूलों की वर्षा |
| दिवः | — | आकाश से |
| पतति | — | होती है |
| वा | — | अथवा |
| ते | — | तुम्हारे |
| वचसां | — | वचनों की |
| ततिः | — | पंक्ति ही फैलती है । |

१. देवलोक में जो उत्पन्न होवे, अथवा देवों के द्वारा जो की जाय । पारमार्थिकी को भी दिव्य कहते हैं ।

( ३३ )

अर्थ-गंधोदक की बूंदों सहित, शुभ और मंद २ वायु के साथ गिरने वाली मन्दार, सुन्दर, नमेरु, सुपारिजात, संतानक आदि कल्प वृक्षों के फूलों (के समूह) की वर्षा आकाश से गिरती है अथवा आपके वचनों की श्रेष्ठ तथा दिव्य पंक्ति ही फैलती है।

भावार्थ-भगवान के समवसरण में फूलों की जो वर्षा होती है, वह ऐसी जान पड़ती है कि मानों भगवान के दिव्य वचन ही फैल गए हों (यह छठा प्रतिहार्य है)।

---

( 33 )

The shower of clusters of flowers of the trees Mandar, Sunder, Nameru, Suparijat and Santanak etc, falling down gently from the sky with the auspicious mild breeze laden with drops of perfumed water, looks as if the continuous flow of Divine and excellent words is pouring out of your mouth.

[1]शुम्भत्प्रभावलय भूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रय[2] द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर भूरिसंख्या-
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्[3] ॥३४

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| विभो: ! | — | हे प्रभो ! |
| प्रोद्यत् दिवाकर निरन्तर भूरि संख्या | — | दैदीप्यमान सघन और अनेक संख्या वाले सूर्य के तुल्य |
| ते | — | तुम्हारे |
| शुम्भत् प्रभावलय-भूरिविभा | — | शोभायमान प्रभामण्डल की अतिशय प्रभा |
| लोकत्रय द्युतिमताम् | — | तीनों लोकों के प्रकाशमान पदार्थों की |
| द्युतिम् | — | द्युति को |
| आक्षिपन्ति | — | तिरस्कार करती हुई (तथा) |
| सोम सौम्याम् अपि | — | चन्द्रमा से मनोहर एवं शीतल |
| निशाम् अपि | — | रात्रि को भी |
| दीप्त्या | — | अपनी दीप्ति के द्वारा |
| जयति | — | जीतती है । |

---

१. 'चञ्चत्प्रभा' पाठ भी है ।
२. 'लोकत्रये' पाठ भी है ।
३. 'सोम सौम्या' पाठ भी है, जिसका अर्थ है 'चन्द्रमा के समान सौम्य होने पर भी'

अर्थ–हे प्रभो ! देदीप्यमान, सघन और अनेक संख्यावाले सूर्यो के तुल्य आपके शोभायमान भामण्डल की अतिशय प्रभा तीन लोक के प्रकाशमान पदार्थों की द्युति को तिरस्कार करती हुई, चन्द्रमा के समान शान्त होने पर भी अपनी दीप्ती से रात्रि को भी जीत लेती है।

**भावार्थ**–यह विरोधाभास अलङ्कार है। इसमें विरोध तो यह है कि सोम 'सोम्या' अर्थात् जो प्रभा चन्द्रमा के समान होगी वह रात्री को सुशोभित करेगी। परन्तु यहां कहा है कि जीतती है, आच्छादित करती है। और विरोध का परिहार इस प्रकार होता है कि 'दीप्त्या' अर्थात् दीप्ति से रात्रि को जीतती है, रात्री का अभाव करती है। सारांश यह है कि भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटि सूर्य के समान तेजयुक्त है तो भी आताप करने वाली नहीं है। वह चन्द्रमा के समान शीतल है और रात्री का अन्धकार नहीं होने देती है (यह सातवां प्रतिहार्य है)।

( 34 )

O Majestic Lord ! the excessive light of your glittering Halo, surpassing the lustre of the brilliant objects of the three worlds, despite being dazzling like the raging radiance of hundreds of Suns, that overcomes the darkness of night, it is gentle and mild like the light of the Moon.

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्ट,
सद्धर्मतत्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्यां ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभाव-परिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| (हे जिनदेव !) स्वर्गापवर्गगम मार्ग-विमार्गणेष्टः | — | स्वर्ग और मोक्ष जाने के मार्ग को अन्वेषण करने में इष्ट (आवश्यक) अथवा स्वर्ग-मोक्ष मार्ग को खोजने वाले मुनियों को इष्ट (तथा) |
| त्रिलोक्याः | — | तीनों लोकों के |
| सद्धर्म तत्त्वकथनैक पटुः | — | सम्यग् धर्म के तत्वों के कहने में एक मात्र चतुर (और) |
| विशदार्थ सर्व भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः | — | निर्मल जो अर्थ और उसके समस्त भाषाओं के परिणमन रूप जो गुण, उन गुणों से |
| प्रयोज्य | — | जिसकी योजनाएँ होती हैं ऐसी |
| ते | — | तेरी |
| दिव्यं ध्वनि | — | दिव्य ध्वनि |
| भवति | — | होती है । |

( ३५ )

अर्थ-स्वर्ग और मोक्ष जाने के मार्ग को अन्वेषण करने में आवश्यक तथा तीन लोक के समीचीन धर्म के तत्वों के कहने में एक मात्र चतुर और विस्तृत अर्थ तथा उसके समस्त भाषाओं के परिणमन अर्थ जो गुण, उन (गुणों) से जिसकी योजना होती है, ऐसी आप की दिव्य ध्वनि होती है।

**भावार्थ**-भगवान की वाणी में यह अतिशय है कि सुनने वालों को सम्पूर्ण भाषाओं में, निर्मल रूप से उसका परिणमन हो जाता है अर्थात् भगवान की वाणी जो सुनता है वही अपनी भाषा में सरलता से समझ लेता है (यह आठवां प्रतिहार्य है)।

(35)

Your Divine Voice which is indispensable in seeking out the path to heaven and salvation, singularly proficient in expounding the essentials of the right Religion of the three worlds and clear with profound meanings, is endowed with the faculty of being made comprehensible to every one in his own language.

उन्निद्रहेमनवपङ्कज-पुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ॥३६

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| जिनेन्द्र ! | — | हे जिनेन्द्र ! |
| उन्निद्रहेमनव पङ्कज-पुण्य कान्ती | — | खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के सदृश कांति वाले (और) |
| पर्युल्लसन नख मयूख-शिखा भिरामौ | — | चारों ओर उछलती हुई नखों की किरणों के कारण सुन्दर, ऐसे |
| तव | — | तुम्हारे |
| पादौ | — | चरण |
| यत्र | — | जहां पर |
| पदानि | — | स्थान |
| धत्तः | — | धारण करते हैं-पाते हैं |
| तत्र | — | वहां पर |
| विबुधा | — | देवगण |
| पद्मानि | — | सुवर्ण कमलों को |
| परिकल्पयन्ति | — | परिकल्पित करते हैं-अर्थात् कमलों की रचना करते हैं । |

( ३६ )

अर्थ–हे जिनेन्द्र ! खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के सदृश कान्ति युक्त और उछलती हुई नखों की किरणों कर के सुन्दर, ऐसे आपके चरण जहां पर डग रखते हैं वहां पर देवगण कमलों को रचते जाते हैं ।

**भावार्थ**–जहां जहां भगवान चरण रखते हैं वहां पर देवगण कमलों की रचना करते जाते हैं ।

( 36 )

O Jinendra (the Lord of conquerors) gods create lotuses wherever you step. Your pair of feet which bear the lustre of recently blown lotuses of gold are beautified by the rays of light skipping from the nails.

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ॥३७

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| जिनेन्द्र ! | — | हे जिनेन्द्र ! |
| इत्थं | — | इस प्रकार |
| धर्मोपदेशन विधौ | — | धर्मोपदेश के विधान में अर्थात् धर्म का उपदेश देते समय समवसरण में |
| तव | — | तुम्हारी |
| विभूति | — | समृद्धि |
| यथा | — | जैसी |
| अभूत् | — | थी |
| तथा | — | वैसी |
| परस्य | — | अन्य किसी देव की |
| न | — | नहीं हुई । (सो ठीक ही है) |
| दिनकृतः | — | सूर्य की |
| यादृक् | — | जैसी |
| प्रहतान्धकारा | — | अन्धकार को नष्ट करने वाली |
| प्रभा | — | प्रभा होती है |
| तादृक् | — | वैसी प्रभा |
| विकाशिनः | — | प्रकाशमान् |
| अपि | — | भी |
| ग्रहगणस्य | — | तारागणों की |
| कुतः | — | कहां से हो सकती है ? |

( ३७ )

**अर्थ**–हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेश देते समय समवसरण में पूर्वोक्त प्रकार से आपकी समृद्धि जैसी हुई वैसी हरिहरादि दूसरे देवों की नहीं हुई (क्योंकि) सूर्य की जैसी अन्धकार को नष्ट करने वाली प्रभा होती है वैसी प्रकाशमान तारागणों की कहां से होवे ।

**भावार्थ**–यद्यपि तारागण थोड़े बहुत चमकने वाले होते हैं तो भी वे सूर्य के समान प्रकाशित नहीं हो सकते हैं । इसी प्रकार यद्यपि हरिहरादिक देव हैं तो भी वे आपकी समवसरण जैसी विभूति को धारण नहीं कर सकते ।

( 37 )

O Jinendra ! the Exuberant erudition manifested by you during the course of Religious Preachings was never attained by any body else. The dazzling radiance perceptible in the Sun is capable of destroying the darkness, when radiance can never be obtained by a cluster of shining planets or stars.

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तम्
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८

अन्वयार्थ :

हे नाथ !
श्च्यो तन्मदां विल विलोल-
कपोल मूल मत्त भ्रमद्-
भ्रमरनादविवृद्धकोपम् — झरते हुए मद से मलिन तथा चंचल गंडस्थल पर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुए भौरों के शब्दों से जिसका क्रोध बढ़ा हुआ है, ऐसे

| | | |
|---|---|---|
| ऐरावताभम् | — | ऐरावत हाथी के समान आकार वाले |
| उद्धतम् | — | उद्धत यानि अंकुशादि को नहीं मानने वाले |
| आपतन्तम् | — | ऊपर आते हुए |
| इमम् | — | हाथी को |
| दृष्ट्वा | — | देख कर |
| भवत् आश्रितम् | — | आपके आश्रय में रहने वाले पुरुषों को |
| भयम् | — | भय |
| नो | — | नहीं |
| भवति | — | होता है । |

( ३८ )

अर्थ-झरते हुए मंद से जिसके गण्डस्थल मलिन तथा चचंल हो रहे हैं और उन पर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुए भौंरे अपने शब्दों से जिसका क्रोध बढ़ा रहे हैं, ऐसे ऐरावत हाथी के समान आकार वाले, निरकुंश तथा ऊपर आक्रमण करने वाले हाथी को देख कर आश्चर्य में रहने वाले पुरुषों को भय नहीं होता है।

भावार्थ-अत्यन्त उच्छंखल हाथी को देखकर भी आपके भक्त-जन भयभीत नहीं होते हैं।

( 38 )

The devotees who have taken shelter in you are not terrified in the least when they see themselves attacked by the unruly and intoxicated huge elephant, (Airawat like-god Indra's elephant) whose temples are restless and drenched on account of the constant dripping of ichor, who has been provoked by the excited humming bees flying near the frontal globes.

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफल[1] प्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः[2] क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९

अन्वयार्थ :

हे नाथ !

| | | |
|---|---|---|
| भिन्नेभकुम्भगल दुज्ज्वल-शोणिताक्त मुक्ताफल[1] प्रकर भूषित भूमि भागः | — | विदारे हुए हाथियों के मस्तकों से गलते हुए उज्ज्वल रक्त से आर्द्र मोतियों से जिसने भू भाग को सजा दिया है (ऐसा) |
| बद्धक्रमः[2] | — | आक्रमण के लिए छलांग भरता हुआ |
| हरिणाधिपः अपि | — | सिंह भी |
| ते | — | तेरे |
| क्रमयुगाचल संश्रितं | — | चरण युगल रूप पर्वतों में रहने वाले मनुष्य पर (चाहे वह) |
| क्रम गतम् | — | उसके पैरों के सामने खड़ा है (फिर भी) |
| न आक्रामति | — | आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता। |

१. मदोन्मत्त हाथियों के मस्तकों में मोती उत्पन्न होते हैं जिन्हें गज-मुक्ता कहते हैं ।

२. 'बद्धक्रम' का 'बन्धे हुए हैं पैर जिसके' ऐसा भी अर्थ होता है । क्योंकि जो स्वभाव से ही क्रूर होता है उस सिंह का यदि पैर बांध दिए जावें तो फिर उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहता । पर उस क्रोधावस्था में भी वह आपके शरणागतों का घात नहीं करता ।

( ३६ )

अर्थ-विदीर्ण हाथियों के मस्तकों से जो खून भरे हुए उज्ज्वल मोती गिरते हैं, उनके समूह से जिसने पृथ्वी के भाग शोभित कर दिये हैं, ऐसा तथा आक्रमण करने के लिये वांधी है चौकड़ी (छलाङ्ग) जिसने, ऐसा सिंह भी पंजे में पड़े हुए आपके दोनों चरण रूपी पर्वतों का आश्रय लेने वाले मनुष्य पर आक्रमण नहीं कर सकता है।

भावार्थ-आपके चरणों का आश्रय लेने वाले भक्त जनों पर भयानक सिंह भी आक्रमण नहीं कर सकता है।

---

( 39 )

The lion (king of the beasts) who has decorated a part of the ground with a lot of white pearls drenched in blood from the rent temples of elephants and has assumed a posture of aggression, cannot attack the man who has taken refuge at your mountain like feet, even though he has fallen into his clutches.

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।४०

अन्वयार्थ :

हे भगवन् !

| | | |
|---|---|---|
| कल्पान्तकाल पवनोद्धत-वह्निकल्पम् | — | प्रलयकाल के पवन से उत्तेजित हुई अग्नि के सदृश (तथा) |
| मुत्स्फुलिङ्गम्[1] | — | ऊपर की ओर उड़ते हुए फुलिंग वाली |
| ज्वलितम् | — | जलती हुई |
| उज्ज्वलम् | — | उज्ज्वल (और) |
| अशेषम् | — | सम्पूर्ण |
| विश्वम् | — | संसार को |
| जिघत्सुम् इव | — | नाश करने को तत्पर की तरह |
| सम्मुखम् | — | सामने |
| आपतन्तम् | — | आती हुई |
| दावानलम् | — | दावाग्नि को |
| त्वन्नामकीर्तन जलम् | — | तुम्हारे नाम का कीर्तन रूपी जल |
| शमयति | — | शान्त कर देता है । |

१. 'उत्फुलिंग' पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है पर संस्कृत कोषों में तथा अन्यत्र भी सकार युक्त फुलिंग शब्द ही सिद्ध होता है । अतः 'उत्स्फुलिङ्गम्' ही उपयुक्त है ।

( ४० )

अर्थ–प्रलय काल के पवन से उत्तेजित अग्नि के सदृक्ष तथा उड़ रही हैं चिनगारियां जिसमें, ऐसी जलती हुई उज्ज्वल और सम्पूर्ण संसार को नाश करने की मानो जिसकी इच्छा ही है, ऐसी सामने आती हुई दावाग्नि को आपके नाम का कीर्तन रूपी जल शान्त करता है।

भावार्थ–आपके गुणों का गान करने से बड़ी भारी दावाग्नि भी भक्त-जनों का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती।

( 40 )

The furious forest conflagration like the intense fire moving ahead infuriated by the violent storms of the tempests of Destruction, tossing up sparks and blazing up in flames, spreading swiftly as if intent to reduce the Universe to cinder, is quickly quietened totally by the water of your laudation.

रक्तेक्षणं समदकोकिल-कण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१

अन्वयार्थ :

(हे जगन्नाथ)

| | | |
|---|---|---|
| यस्य | — | जिस |
| पुंसः | — | पुरुष के |
| हृदि | — | हृदय में |
| त्वन्नाम नागदमनी | — | तुम्हारे नाम रूपी नागदमनी जड़ी है (वह पुरुष) |
| क्रम युगेन | — | अपने पैरों से |
| रक्तेक्षणम् | — | लाल नेत्र वाले |
| समद कोकिल कंठनीलम् | — | मदोन्मत्त कोयल के कण्ठ के समान काले |
| क्रोधोद्धतम् | — | क्रोध से उद्धत हुए (और) |
| उत्फणम् आपतन्तम् | — | फण उठा कर डसने को आते हुए |
| फणिनम् | — | सर्प को |
| निरस्तशङ्क | — | निडर होकर (शंका रहित होकर) |
| आक्रामति | — | उल्लंघन कर जाता है अर्थात् उस पर पैर रखकर ऊपर से चला जाता है । |

( ४१ )

अर्थ-जिस पुरुष के हृदय में आपके नाम की नागदमनी जड़ी है, वह पुरुष अपने पैरों से लाल नेत्र वाले मदोन्मत्त कोयल के कण्ठवत, काले, क्रोध से उद्धत हुए और उठाया है ऊपर को फरण जिसने, ऐसे (डसने के लिए) झपटते हुए सांप को निडर होकर उल्लंघन करता है अर्थात् उसके ऊपर से चला जाता है।

भावार्थ-आपका नाम स्मरण करने वाले भक्त जनों को भयंकर सांपों का भी कुछ भय नहीं होता।

( 41 )

The man who possesses the Nagdamni (Asparagus Plant) of your name rooted in his heart, fearlessly treads over the most poisonous red eyed serpent as black as the neck of an intoxicated cuckoo, and indignant with rage ready to sting with its hood raised.

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जित भीमनाद-
माजौ वलं वलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्द्दिवाकरमयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२

अन्वयार्थ :

(हे जिनेश्वर)

| | | |
|---|---|---|
| आजौ | — | संग्राम में |
| त्वत्कीर्तनात् | — | आपके नाम का कीर्तन करने से |
| वलवताम् | — | वलवान् |
| भूपतीनाम् | — | राजाओं का |
| वलगत्तुरगं गज गर्जित-<br>भीमनादम् | — | युद्ध करते हुए घोड़ों और हाथियों की गर्जना से जिसमें भयंकर शब्द हो रहे हैं, ऐसा |
| वलम् अपि | — | सैन्य भी |
| उद्य द्विवाकर मयूख-<br>शिखा पविद्धम | — | उदय को प्राप्त हुए सूर्य की किरणों के अग्र भाग से नष्ट हुए |
| तमः इव | — | अन्धकार के समान |
| आशु | — | शीघ्र ही |
| भिदाम् | — | भिन्नता को, नाश को |
| उपैति | — | प्राप्त हो जाता है । |

( ४२ )

अर्थ-संग्राम में, आपके नाम का कीर्तन करने से, वलवान् राजाओं के दौड़ते हुए घोड़ों और हाथियों की गर्जना से जिसमें भयानक शब्द हो रहे हैं, ऐसी सेना भी उदित सूर्य (अरुणोदय) की किरणों के अग्र भाग से नष्ट हुए अन्धकार के समान शीघ्र ही भिन्नता को, नाश को प्राप्त होता है।

भावार्थ-जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आप के गुणों का गान करने से राजाओं की वड़ी-वड़ी सेनाएं भी नष्ट हो जाती हैं।

( 42 )

By praising you the powerful armies of the warrior kings, in a battle resounding with the noise of galloping horses and trumpating elephants, are instantaneously vanquished like the dispersion of the thick nocturnal darkness by the rays of the rising Sun.

कुंताग्रभिन्नगज—शोणितवारिवाह-
वेगावतार-तरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥४३

अन्वयार्थ :

(हे देव !)

| | | |
|---|---|---|
| कुन्ताग्र भिन्न गज शोणित-वारिवाह् वेगावतार तरणा-तुरयोध भीमे | — | बरछी की नोकों से छिन्न-भिन्न हाथियों के रक्त रूपी जल प्रवाह के वेग में पड़े हुए और तैरने के लिए आतुर योद्धाओं से जो भयानक दिख रहा है, ऐसे |
| युद्धे | — | युद्ध में |
| त्वत् पाद पङ्कज वना-श्रयिणः | — | आपके चरण कमल रूपी वन का आश्रय लेने वाले पुरुष |
| विजित दुर्जय जेय पक्षाः | — | दुर्जय शत्रु पक्ष को जीतने वाले |
| जयम् | — | विजय को |
| लभन्ते | — | प्राप्त करते हैं । |

( ४३ )

**अर्थ**–भालों की नोकों से छिन्न-भिन्न हुए हाथियों के रक्त रूपी जल प्रवाह के वेग में गिरे हुए और उसे तैरने के लिये आतुर योद्धाओं से जो भयानक हो रहा है, ऐसे युद्ध में आप के चरण-कमल रूपी वन का आश्रय लेने वाले पुरुष दुर्जय (जो नहीं जीता जा सके) शत्रु पक्ष को जीतते हुए, विजय को प्राप्त करते हैं।

**भावार्थ**–आपके चरण-कमलों की सेवा करने वाले भक्त-जन, बड़े भारी युद्ध में भी शत्रु को जीत कर विजयी होते हैं।

---

( 43 )

In the fierce battle in which the warriors are struggling to swim the streams of blood gushing out of the elephants rent up by the lancepoints, those having sought refuge in the forest of your lotus like feet, emerge victorious vanquishing even those unconquerable.

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रंगत्तरग शिखरस्थितयानपात्रा-
[1]स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४

अन्वयार्थ :

(हे जगदाधार !)

| | | |
|---|---|---|
| भवतः | — | आपके |
| स्मरणात् | — | स्मरण करने से |
| क्षुभित भीषण नक्र चक्र-<br>पाठीन पीठ भयदोल्वण-<br>वाडवाग्नौ | — | भीषण नक्र (मगर) चक्र घड़ियाल, पाठीन एवं पीठ जाति की मछलियों से तथा भयजनक और विकराल बड़वाग्नि से क्षुभित |
| अम्भोनिधौ | — | समुद्र में |
| रंगत्तरंग शिखर स्थित-<br>यान पात्राः | — | उछलती हुई तरंगों के शिखरों पर जिनके जहाज पड़े हुए हैं, ऐसे पुरुष |
| त्रासं विहाय | — | बिना त्रास या कष्ट के |
| व्रजंति | — | पार चले जाते है । |

१. त्रासस्त्वा कस्मिकं भयं इति हैम
'त्रास' का अर्थ हेमचन्द्राचार्य ने 'आकस्मिक भय' किया है ।

( ४४ )

अर्थ-आपके स्मरण करने से भीषण मगर, घड़ियाल, पाठीन और पीठों से तथा भयंकर विकराल वड़वाग्नि से क्षुभित समुद्र में उछलती हुई तरंगों के शिखरों पर जिनके जहाज पड़े हुए हैं, ऐसे पुरुष निडर होकर (बिना भय के) पार हो जाते हैं।

भावार्थ-आपका नाम स्मरण करने से भयानक समुद्र में पड़े हुए जहाज वाले भी पार हो जाते हैं।

( 44 )

Persons seated in the ships staggering on the summits of the impetuous waves of the ocean infested with the terrible crocodiles, alligators, whales and peeth aquadits etc. and by the dreadful submarine fire, sail to the shore fearlessly by contemplating your name.

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पाद-पंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५

अन्वयार्थ :

(हे जिनराज !)

| | | |
|---|---|---|
| उद्भूत भीषण जलोदर-भार भुग्नाः | — | उत्पन्न हुए भयानक जलोदर के भार से जो कुबड़े होकर |
| शोच्यां दशां | — | शोचनीय अवस्था को |
| उपगताः | — | प्राप्त हो गए हैं (तथा) |
| च्युतजीविताशा | — | जीने की आशा छोड़ चुके हैं, (ऐसे) |
| मर्त्या | — | मनुष्य |
| त्वत्पाद पंकजरजोऽमृत-दिग्धदेहाः | — | तुम्हारे चरण-कमलों की धूलि के अमृत से देह लिप्त करके |
| मकरध्वज तुल्य रूपाः | — | कामदेव के समान रूप वाले |
| भवन्ति | — | हो जाते हैं। |

( ४५ )

अर्थ-उत्पन्न हुए भयानक जलोदर रोग के भार से जो कुबड़े हो गए हैं और शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर जीने की आशा छोड़ बैठे हैं, ऐसे मनुष्य आपके चरण-कमल के रज रूपी अमृत से अपनी देह लिप्त करके कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले हो जाते हैं।

भावार्थ-जैसे अमृत के लेप से मनुष्य नीरोग और सुस्वस्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार आपके चरण-कमल के रज रूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा से) जलोदर आदि रोगों से पीड़ित पुरुष भी कामदेव सदृश रूपवान हो जाते हैं।

---

( 45 )

Persons, bent down under the weight of horribly swollen dropsy, having reached a precarious stage and have lost hopes of survival, are also cured and transformed into handsomeness like that of God Cupid by anointing the nectar of the pollen of your lotus like feet.

आपादा-कण्ठमुरुश्रृङ्खल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः ।
त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजा, स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| आपादकण्ठम् | — | पैरों से लेकर कण्ठ तक |
| उरुश्रृंखलवेष्टितांगा | — | बड़ी-बड़ी सांकलों से जिनके अंग जकड़े हुए हैं (और) |
| गाढ़म् | — | अत्यन्त (प्रगाढ़) |
| बृहन्निगडकोटि निघृष्ट-जंघाः | — | बड़ी-बड़ी बेड़ियों के किनारों से जिनकी जंघाएं छिल गई हैं, ऐसे |
| मनुजाः | — | मनुष्य |
| त्वन्नाममन्त्रम् | — | तुम्हारे नाम रूपी मन्त्र को |
| अनिशम् | — | सतत |
| स्मरन्तः | — | स्मरण करते हुए |
| सद्यः | — | तत्काल ही |
| स्वयम् | — | अपने आप |
| विगतबन्धा भया | — | बन्धन के भय से सर्वथा मुक्त |
| भवन्ति | — | हो जाते हैं । |

( ४६)

अर्थ-जिन के अंग (शरीर) पांव से लेकर गले तक, बड़ी २ जंजीरों से निरन्तर जकड़े हुए हैं और बड़ी २ बेड़ियों के किनारों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गई हैं, ऐसे मनुष्य आप के नाम रूपी मन्त्र को स्मरण करने से तत्काल ही अपने आप बन्धन के भय से सर्वथा रहित हो जाते हैं।

भावार्थ-आपका स्मरण करने से कठिन कैद में फंसे हुए मनुष्य भी शीघ्र छूट जाते हैं।

( 46 )

Persons who are always kept cordoned by strong Iron Chains right from the ankle to the neck, whose thighs have been badly bruised by the frictions of the corners of big shackles, get themselves rid of them immediately and have no fear of confinement by incessantly (day and night) reciting your name, which takes the shape of a kind of incantation.

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।।४७

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| य: | — | जो |
| मतिमान् | — | बुद्धिमान |
| इमम् | — | इस |
| तावकं | — | तुम्हारे |
| स्तवम् | — | स्तोत्र को |
| अधीते | — | अध्ययन करता है, पढ़ता है |
| तस्य | — | उसके |
| मत्तद्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहिसंग्राम वारिधि-महोदर बन्धनोत्थम्-मत्त | — | हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, जलोदर-रोग और बन्धन इन आठ कारणों से उत्पन्न हुआ |
| भयम् | — | भय |
| भिया इव | — | डरे हुए की तरह |
| आशु | — | शीघ्र ही |
| नाशम् | — | नाश को |
| उपयाति | — | प्राप्त हो जाता है। |

( ४७ )

अर्थ-जो बुद्धिमान आपके इस स्तोत्र का अध्ययन करता है, पढ़ता है उसके मस्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, जलोदर रोग और बंधन आदि इन आठ कारणों से उत्पन्न भय से डर कर ही मानों शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

**भावार्थ**-ऊपर कहे हुए आठ तथा इनके सदृश और भी भय उस पुरुष से डर कर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, जो पुरुष इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करता है।

---

( 47 )

The wise man who recites this Panegyric of you has found that his fear arising out of intoxicated elephant, lion, fire, serpent, battle, ocean, dropsy and bonds suddenly vanish away as if it (fear) were being frightened.

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८

अन्वयार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| जिनेन्द्र ! | — | हे जिनेन्द्र ! |
| इह | — | इस संसार में |
| मया | — | मेरे द्वारा |
| भक्त्या | — | भक्ति पूर्वक |
| गुणैः | — | अनन्त ज्ञानादि गुणों से |
| निबद्धाम् | — | गूंथी हुई |
| रुचिर वर्ण विचित्र-पुष्पाम् | — | मनोज्ञ अकारादि वर्णों के (यमक, श्लेष, अनुप्रासादि रूप) विचित्र फूलों वाली और |
| तव | — | तुम्हारी |
| स्तोत्र स्रजम् | — | स्तोत्र माला को |
| यः | — | जो पुरुष |
| अजस्रम् | — | सदैव |
| कण्ठगताम् | — | कण्ठ में |
| धत्ते | — | धारण करता है |
| तम् | — | उसे |
| मानतुङ्गम् | — | मानने से ऊंचे अर्थात् आदरणीय पुरुष को |
| लक्ष्मीः | — | राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और सत्काव्य रूप लक्ष्मी |
| अवशा | — | विवश होकर |
| समुपैति | — | प्राप्त करती है । |

( ४८ )

अर्थ-हे जिनेन्द्र ! इस संसार में मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक आप के अनन्त ज्ञानादि गुणों से गूंथी हुई सुन्दर अकारादि वर्णों के यमक, श्लेष, अनुप्रासादि रूप विचित्र फूलों वाली और कण्ठ में मढ़ी हुई आपकी इस स्तोत्र रूपी माला को जो पुरुष सदैव धारण करता है उस आदरणीय पुरुष को राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और सत्काव्य रूप लक्ष्मी विवश होकर प्राप्त होती है।

(48)

O Lord ! in the world the goddess of Prosperity (wealth, dignity, heavens and salvation) will be impelled to approach the person who always wears round his neck (keeps by his heart) this garland of the Eulogy composed by (Acharya) Mantung Preceptor in the elegant style of your innumerable virtues (infinite knowledge etc.) and interwoven in multifarious flowers of varied and attractive (alliterations, pun etc.) hues.
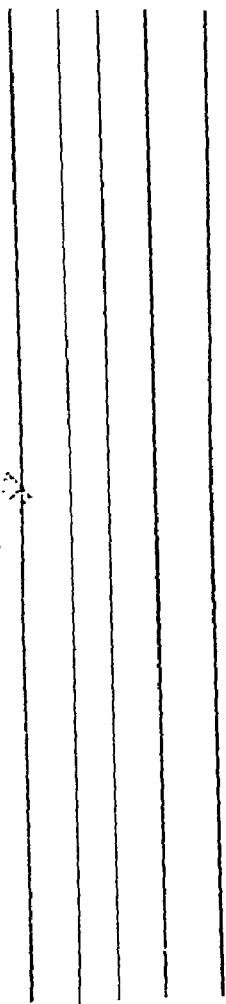
# रत्नाकर पच्चीसी

RATNAKAR PACHISI
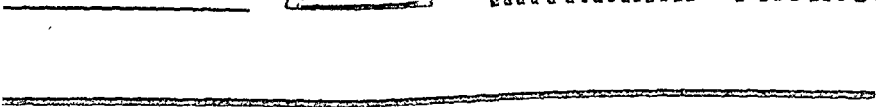
# रत्नाकर पच्चीसी

श्रेयः श्रियां मङ्गल-केलिसद्म !
नरेन्द्र-देवेन्द्र-नताङ्घ्रिपद्म !
सर्वज्ञ ! सर्वातिशय-प्रधान !
चिरं जय ज्ञान-कला निधान ! १

■

शुभकेलि के आनन्द के घन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजितचरण गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो, सर्वोच्च हो सब से सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ।।१

■

भावार्थ-हे मोक्ष रूपी लक्ष्मी के मंगलमय क्रीड़ा के घर। हे राजा और इन्द्रों से पूजित चरण कमल वाले। हे सर्वज्ञ। हे सब अतिशयों से श्रेष्ठ। हे ज्ञान कला के भण्डार। आपकी चिरकाल तक जय-विजय हो।

■

O Ye the Abode of the auspicious sport (amusement) of the Goddess of Salvation and Wealth. O Ye Lord ! at whose lotus like feet bow down the temporal kings and the celistial gods.

O Ye the omniscient, the supermost of all the Excellences. O Ye the Store of all the brilliant Arts of Knowledge. Long live your triumphs and Victories.

जगत्त्रयाधार ! कृपावतार !
दुर्वार-संसार-विकार-वैद्य !
श्री वीतराग ! त्वयि मुग्धभावाद्,
विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञपयामि किंचित् ॥२

◻

संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जयश्रीश ! रत्नाकर प्रभो ! अनुपम कृपा-अवतार हो ।
गतराग ! है विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो, मुझको अभयवर दीजिए ॥२

◻

भावार्थ–हे तीन जगत् के आधार, दया के साक्षात् अवतार, दुःसाध्य संसार रूपी रोग को दूर करने में वैद्य के समान, हे राग द्वेष के विजेता सर्वज्ञ प्रभो ! मैं सरलभाव से आपकी सेवा में कुछ निवेदन करता हूँ ।

◻

O Ye the Recourse (Shelter) of the three worlds ! the vivid Incarnation of Mercy ! the Physician to heal the incurable malady of worldly existence (Cycle of Births and Deaths) !

O Ye the Stainless free of attachments (and aversions) ! O Ye the omniscient ! I with unsophisticated (Sincere) heart narrate before you something.

किं बाललीलाकलितो न बालः,
पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः ?
तथा यथार्थं कथयामि नाथ ?
निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥३

□

माता पिता के सामने बोली सुना कर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली ?
अपने हृदय के हाल को वैसे यथोचित रीति से-
मैं कह रहा हूं, आपके आगे विनय से प्रीति से ॥

□

**भावार्थ** : क्या बाल क्रीड़ा से युक्त बालक अपने माता-पिता के सन्मुख विना विचारे जैसे तैसे नहीं बोलता है ? वैसे ही हे नाथ ! आपके सन्मुख मैं अपना आशय, अपनी सही-सही स्थिति विनम्रता पूर्वक निवेदन करता हूँ ।

□

Does not a child infused with sportive (amusing) activities, prattle before his parents unhesitatingly good and bad things ?

Similarly, O Ye Lord, I expose before you my real condition (purport) with a repentive mind.

दत्तं न दानं, परिशीलितं च,
न शालि शीलं, न तपोऽभितप्तम् ।
शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्,
विभो ! मया भ्रान्तमहो ? मुधैव ॥४

■

मैंने नहीं जग में कभी कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया ।
शुभ भावना मेरी हुई अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि-धार में ॥४

■

भावार्थ : हे प्रभो । मैंने न तो दान ही दिया, न श्रेष्ठ शील का पालन किया, न तप का आचरण ही किया और न पवित्र भावना ही पायी । खेद है कि मैं इस भव में व्यर्थ ही भटकता रहा ।

■

O Lord ! neither have I distributed charities, nor observed excellent conduct, nor performed any austerities, nor entertained pious sentiments. Alas ! I wandered vainly in this existence.

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्य-महोरगेण ।
ग्रस्तोऽभिमानाजगरेण माया-जालेन,
बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ?५

□

क्रोधाग्नि में मैं रातदिन हा ! जल रहा हूँ हे प्रभो !
मैं लोभ नामक सांप से काटा गया हूँ हे विभो !
अभिमान के खल ग्राह से अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भांति हों स्मृत आप माया-जाल में मैं व्यस्त हूं ।।

□

**भावार्थ** : मैं क्रोध रूपी आग से जला हुआ हूँ, अभी भी उसमें जल रहा हूँ, लोभ रूपी महा दुष्ट सांप से डसा गया हूँ, अहंकार रूपी अजगर से निगला गया हूँ और माया के बन्धनों में जकड़ा हुआ हूँ । हे प्रभो । ऐसी स्थिति में मैं आपकी स्तुति-भक्ति कैसे करूं ?

□

I am being kindled by the fire of rage, bitten by the big wicked serpent of avarice, swallowed by the dragon of arrogance and enchained by the shackles of hypocrisy. O Lord ! how can I, in these circumstances. undertake your devotion ?

कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह,
लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत् ।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म,
जिनेश ! जज्ञे भव-पूरणाय ॥६

□

लोकेश ! पर-हित भी किया मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, चीखता हूँ शोक में ॥
मुझ तुल्य ही नर-नारियों का जन्म जग में व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर ! वह भवों की पूर्णता के अर्थ है ॥६

□

**भावार्थ :** हे तीन लोक के नाथ ! मैंने पर भव में और इस भव में भी किसी का हित नहीं किया, जिससे मुझे लोक में कुछ भी सुख नहीं मिला । हे जिनदेव ! हमारे जैसों का जन्म केवल भवों की पूर्ति के लिये ही हुआ है ।

□

O Ye Lord of the three worlds ! I have not done any thing beneficial to any body in the previous existence nor in the present life, in consequence of which I have not experienced any happiness. O Ye the conqueror of passions ! I deem the birth of beings like myself, is only to make up the number of existences !

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्त !
त्वदास्यपीयूष मयूखलाभात् ।
द्रुतं महानन्दरसं कठोर-
मस्मादृशां देव ! तदश्मतोऽपि ॥७

प्रभु ! आपने निज मुख-सुधा का दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्त ने उसका न कुछ भी फल लिया ॥
आनन्द-रस में डूब कर सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७

भावार्थ–हे सुन्दर स्वरूप (चरित्र) वाले प्रभो ! आपके मुख-रूपी चन्द्रमा की किरणों को पाकर भी मेरा मन चन्द्रकान्त मणि की तरह आनन्द रस से द्रवित नहीं हुआ तो मैं यह मानता हूं कि हमारे जैसों का मन पत्थर से भी अधिक कठोर है ।

O Ye Lord of admirable conduct ! My heart being enlightened with the rays of your Moonlike face, could not be drenched in the juice of transcendental Bliss (like the Moon Stone-Felspar), therefore, I deduce that my heart is harder than a rock.

त्वत्तः सुदुष्प्राप्यमिदं मयाप्तं,
रत्नत्रयं भूरिभव-भ्रमेण।
प्रमाद-निद्रावशतो गतं तत्,
कस्याग्रतो नायक! पूत्करोमि ?८

□

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहुबार जब जग का भ्रमण मैंने किया,
हा! खो गया वह भी अलस, मैं नींद में सोता रहा,
अब बोलिए उसके लिये रोऊँ प्रभो! किसके यहां ?८

□

भावार्थ-हे प्रभो! बहुत काल तक संसार में भटकने के पश्चात अत्यन्त दुर्लभ सम्यग्ज्ञान दर्शन-चारित्र रूप यह रत्न त्रय मैंने आपसे प्राप्त किया था परन्तु प्रमाद और नींद के वशीभूत होकर मैंने वे रत्न गंवा दिये। हे नाथ! अब किसके आगे जाकर पुकार करूं ?

□

O Ye Lord! after loitering in this world immense times, I have obtained from Thee this rare triplet gem of Right Knowledge, Right Vision and Right Conduct. But being over-come by carelessness and Stupor, I have lost the said pious gems. O Ye the Pioneer (of Salvation) before whom should I cry out now ?

वैराग्य-रङ्गः पर-वञ्चनाय,
धर्मोपदेशो जन-रञ्जनाय ।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत्,
कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश ! ९

संसार ठगने के लिये वैराग्य को धारण किया ।
जग को रिझाने के लिये उपदेश धर्मों का दिया ।
झगड़ा मचाने के लिये मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाई, हे प्रभो ! अपनी हँसी ।।९

भावार्थ-हे प्रभो ! मेरा वैराग्य का रंग दूसरों को ठगने के लिए, मेरा धर्मोपदेश देना मनुष्यों के मनोरंजन के लिए और मेरा विद्या पढ़ना वितण्डावाद के लिए हुआ । हे नाथ ! मैं अपना उपहासयोग्य आचरण आपको कितना कहूं ?

O Ye Lord ! the veneer of my monasticism (asceticism) was for cheating the others, my religious preaching was for gladdening the masses, and my acquisition of Studies was used for presenting the perverse arguments. O Lord ! how far should I enunciate my ridiculous demeanour before you ?

परापवादेन मुखं सदोषं
नेत्रं परस्त्रीजन-वीक्षणेन ।
चेतः परापाय-विचिन्तनेन,
कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ?१०

पर दोष को कह जीभ मेरी है सदा दूषित हुई,
लख कर पराई नारियां हा ! आंख भी दूषित हुई ।
मन भी मलिन है सोच कर पर की बुराई हे प्रभो !
किस भांति होगी लोक में मेरी भलाई ऐ विभो !१०

**भावार्थ**-दूसरों की निन्दा करने से मेरा मुख मलिन है, पराई स्त्रियों को देखने से मेरी आँखे दूषित हैं और दूसरों का बुरा सोचने से मेरा चित्त कलुषित है । हे प्रभो ! मैं कैसे कृतकृत्य होऊंगा (मेरा उद्धार कैसे होगा ?)

O Lord ! my mouth is tarnished by censuring others, my eyes are soiled by gazing at other men's women, my mind is profaned (depraved) by harbouring evils to others. O Lord ! how shall I become self accomplished (obtain deliverance) ?

विडम्बितं यत् स्मर-घस्मराति
दशावशात् स्वं विषयांधलेन ।
प्रकाशितं तद् भवतो ह्रियैव,
सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि ॥११

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जो दुख राक्षसी ।
हा ! आपके सम्मुख उसे अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ ! हो सब जानते स्वयमेव संसृति की क्रिया ॥११

भावार्थ–कामाग्नि से पीड़ित होने के कारण विषयों में अन्धे बन कर मैंने जो अपनी दुर्दशा की है वह संकोच के साथ ही आपके सामने प्रकाशित की है । हे सर्वज्ञ देव ! आप स्वयं सब जानते ही हैं ।

Being afflicated by the fire of sexual passion and blinded by worldly pleasures, the ruin, wrought out by me, has been demonstrated ashamedly before Thee. O Ye Omniscient Lord ! Thou thyself knoweth quite well all my actions.

ध्वस्तोऽन्य-मंत्रैः परमेष्ठि मंत्रः,
कुशास्त्रवाक्यैर् निहतागमोक्तिः ।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गा-
दवाञ्छि ही नाथ ! मतिभ्रमो मे ॥१२

◻

अन्यान्य मंत्रों से परम परमेष्ठि मन्त्र हटा दिया,
सच्छास्त्र वाक्यों को कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया।
विधि उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या-क्या किया ? १२

◻

भावार्थ-हे नाथ ! मैंने मारण उच्चाटन आदि अन्य मंत्रों से परमेष्ठि मंत्र (नवकार मंत्र) का महत्व नष्ट कर दिया। नमस्कार मंत्र की अवहेलना की। मिथ्या शास्त्रों के वचन से जैन आगमों का खण्डन किया, खोटे देवों की संगति से व्यर्थ कर्म प्रपंच करने चाहे। हे प्रभो। यह मेरी कितनी मूर्खता है ?

◻

O Lord ! I have by the incantations (of killing and chastising, etc. disdained the Hymn of Supreme Lords, laudation; by the citation of false scriptures, rebutted (refuted) the Jain scriptures; by the company (familiarity) of faulty gods, vainly aspired to preform the rituals (ceremonies). O Ye Lord ! how big is this my stupidity (delusion) !

विमुच्य दृग्लक्ष्यगतं भवन्तं,
ध्याता मया मूढ़धिया हृदन्तः ।
कटाक्ष-वक्षोज-गम्भीर-नाभि-
कटीतटीया सुदृशां विलासाः ॥१३

हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
आराधना की मूढ़तावश मूढ़ लोगों की विभो !
वामांगियों के कुच कटाक्षों पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों का हृदय में ध्यान मैं करता रहा ॥१३

**भावार्थ**–हे वीतराग ! दृष्टि के सामने रहे हुए आपको छोड़ कर मैं मूढ़-बुद्धि अपने हृदय में स्त्रियों के टेढ़े नेत्र, स्तन, गंभीर नाभि, और कमर आदि की मनोहर चेष्टाओं का ध्यान करता रहा ।

O Ye Non attached ! Leaving Thee existing in the range of my sight, I the stupid, harboured in my mind the coquettish motions of the breasts, deep navels and waists of the charming maidens.

लोलेक्षणावक्त्र निरीक्षणेन,
यो मानसे रागलवो विलग्नः ।
न शुद्धसिद्धान्त-पयोधिमध्ये,
धौतोऽप्यगात् तारक ! कारणं किम् ॥१४

□

लखकर चपल दृग युवतियों के मुख मनोहर रसमयी,
मम मन पटल पर राग-भावों की मलिनता बस गई ।
वह शास्त्र निधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइये प्रभु आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ॥१४

□

भावार्थ-हे तारक ! चंचल नेत्र वाली स्त्रियों के मुख को देखने से मेरे मन में जो राग का रंग लग गया है वह पवित्र सिद्धाँत रूपी समुद्र में धोने पर भी दूर नहीं होता । हे प्रभो ! इसका क्या कारण है ?

□

O Ye the Deliverer ! the taint of love, generated by glancing at the faces of lively (restless) eyed ladies, has so fast stuck my mind, that it cannot be effaced even by washing in the ocean of the pious priciples. O Ye Lord ! What is its reason ?

अगं न चंगं न गणो गुणानां,
न निर्मलः कोऽपि कलाविलासः।
स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च काऽपि,
तथाऽप्यहंकार-कदर्थितोऽहम् ॥१५

मुझमें न अपने अंग के सौंदर्य का आभास है,
मुझमें न गुण-गण है विमल, मुझमें न कला-विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी है चमकती देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्व से मैं मूढ़ हो किसके लिये ॥१५

भावार्थ–न तो मेरा शरीर ही स्वस्थ है, न मुझमें अच्छे विनयादि गुण ही हैं, न कोई पवित्र कलाएं ही मैं जनता हूँ, चमकती हुई कान्ति भी नहीं है, न कोई ऐश्वर्य ही है तो भी मैं अहंकार से भरा हुआ हूँ।

O Ye Lord ! neither my body is handsome, nor does any mass of virtues reside in me, nor am I conversant with any chaste arts, neither have I any sparking radiance, nor do I hold any dignity (grandeur); yet I am puffed up with arrogance.

आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धिर्,
गतं वयो नो विषयाभिलाषः ।
यत्नश्च भैषज्य-विधौ न धर्मे,
स्वामिन् ! महामोह-विडम्बना मे ॥१६

□

हा ! नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय अरु वासना हटती नहीं ।
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ ! बच सकता नहीं ॥ १६

□

भावार्थ–मेरी आयु घटती जा रही है किन्तु पाप-बुद्धि नहीं घटती है । यौवन चला गया परन्तु विषय वासना नहीं गई । शरीर पुष्टि के लिए औषधि करने में यत्न करता हूँ किन्तु धर्म में यत्न नहीं करता हूं । प्रभो मेरी मोह के द्वारा होने वाली कैसी दुर्दशा है ।

□

The span of my life is shrinking, but not the profane mind; my youth has passed away but not the lust of sexual pleasures. For nourishing my physique, I take recourse to medicines, but do not (endeavour) persevere in Religion. O Lord ! in what a calamitous plight I have been pushed due to infatuation ?

नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं,
मया विटानां कटुगीरपीयम् ।
आधारि कर्णे त्वयि केवलार्के,
परिस्फुटे सत्यपि देव ! धिग्माम् ॥१७

अघ पुण्य को, जग, आत्म को मैंने कभी माना नहीं,
हा ! आप आगे हैं खड़े सर्वज्ञ रवि यद्यपि यहीं ।
तो भी खलों के वाक्य को मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा ॥१७

भावार्थ–'आत्मा नहीं, पुण्य नहीं, परभव नहीं और पाप भी नहीं, ऐसी लम्पटों की दुष्ट वाणी को मैंने मान्य की । आपके केवल ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाशमान होते हुए भी उस दुष्ट वाणी को मैंने कानों में धारण की । हे देव ! मुझे धिक्कार है ।

O Lord ! Inspite of the sun of your omniscience shining, I accommodated in my ears the bitter words of the wanton (licentions) fellows that there exists no soul, no meritorious or evil deed, no migration. O Lord ! Fie upon me (shame).

न देव पूजा न च पात्रपूजा,
न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ।
लब्ध्वाऽपि मानुष्यमिदं समस्तं,
कृतं मयारण्य-विलापतुल्यम् ॥१८

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनि धर्म श्रावक धर्म, भी विधिवत् नहीं पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८

भावार्थ-मैंने वीतराग देव की पूजा नहीं की, सुपात्र साधुजनों की सेवा भक्ति नहीं की, श्रावक धर्म नहीं पाला, साधु धर्म की आराधना भी नहीं की। यह मनुष्य भव प्राप्त करके भी मैंने सब कुछ जंगल में रोने के समान व्यर्थ कर दिया।

Neither did I worship the Non-attached God, nor serve the rightious worthy persons; Neither did I observe the house-holders' duties, nor did I worship the vows of an ascetic. Even after having attained the existence of a human being, I have, as crying in the wilderness, negated all.

चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु-
कल्पद्रु-चिन्तामणिषु स्पृहार्तिः ।
न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि,
! मे पश्य विमूढ़भावम् ॥१९

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही ।
हा ! कामधुक् कल्पद्रुमादिक, के यहां रहते हुए,
मैंने गँवाया जन्म को, धिक् लाख-दुःख सहते हुए ॥१९

भावार्थ–वर्तमान में विद्यमान न होते हुए भी कामधेनु कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्न की मैं अभिलाषा करता रहा। प्रत्यक्ष सुख देने वाले जैन धर्म की मैंने अभिलाषा नहीं की। हे जिनेश्वर ! मेरी मूर्खता को तो देखो !

O Ye Lord ! Look at my foolishness, that I aspired even for the non-existing things like Kamdhenu the Indra's (celestial) cow, Kalpdrum (a tree yielding desired commodities) and the fabled gem Chintamani (Philosopher's stone) but I never yearned for the Jain Religion which overtly yields beatitude.

सद्भोग-लीला न च रोगकीला,
धनागमो नो निधनागमश्च ।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते,
व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन ।।२०

मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग-सुख देखा किया,
मन मे न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ का लेखा किया ।
हा ! मैं अधम पुद्गल सुखों का, ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ।।२०

भावार्थ–मुझ नीच ने सुन्दर भोगों का ही चित्त में चिन्तन किया मगर इससे भयंकर रोगों की पीड़ा भी होगी, यह नहीं सोचा । मैंने धन के आने के मार्गों का विचार किया परन्तु मृत्यु का विचार नहीं किया । सुन्दर स्त्रियों का चिन्तन किया परन्तु परिणाम स्वरूप नरक के जेलखाने का विचार कभी नहीं किया ।

I, the scamp contemplated the happy sexual pleasure, but never conjectured the pain dreadful diseases entailed, I designed the sources of Income but never kept in view the Death pursuing, I harboured in mind the beautiful fair sex but never directed my attention towards the Dungeon Hell as its result.

स्थित न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्,
परोपकारान्न यशोर्जितं च।
कृतं न तीर्थोद्धरणादि-कृत्यं,
मया मुधा हारितमेव जन्म ॥२१

सद्वृत्ति से मन मे न मैंने, साधुता हा ! साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता।
चउ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज, मैंने गंवाया व्यर्थ ही ॥२१

**भावार्थ**–हे नाथ ! मैंने अपने सदाचार से सज्जनों के हृदय में स्थान नहीं पाया, परोपकार करके यश भी नहीं प्राप्त किया, तीर्थों का उद्धार आदि कार्य भी नहीं किये। मैं इस जन्म को व्यर्थ ही हार गया।

O Lord ! I did not make room in the heart of noble persons by my good behaviour, I earned no reputation by beneficience to others, I carried out no repairs of the places of pilgrimage (did not remove the defects that had crept in the path of religion). Alas ! I have vainly lost this life.

□

Despite the preceptors preaching, I was not dyed in monasticism detached from wordly Bonds and Attachments). I could not observe quiescence (composure) on hearing the words of knaves. I did not contemplate even a whit of the pure self. Nature. O Lord ! How shall I be capable of swimming across the ocean of this World.

स्थित न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्,
परोपकारान्न यशोर्जितं च ।
कृतं न तीर्थोद्धरणादि-कृत्यं,
मया मुधा हारितमेव जन्म ॥२१

सद्वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा ! साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता ।
चउ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज, मैंने गंवाया व्यर्थ ही ॥२१

**भावार्थ**–हे नाथ ! मैंने अपने सदाचार से सज्जनों के हृदय में स्थान नहीं पाया, परोपकार करके यश भी नहीं प्राप्त किया, तीर्थों का उद्धार आदि कार्य भी नहीं किये । मैं इस जन्म को व्यर्थ ही हार गया ।

O Lord ! I did not make room in the heart of noble persons by my good behaviour, I earned no reputation by beneficience to others, I carried out no repairs of the places of pilgrimage (did not remove the defects that had crept in the path of religion). Alas ! I have vainly lost this life.

[illegible]

Despite the preceptors preaching, I was not dyed in monasticism detached from wordly Bonds and Attachments), I could not observe quiescence (composure) on hearing the words of knaves. I did not contemplate even a whit of the pure self. Nature. O Lord ! How shall I be capable of swimming across the ocean of this World.

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य-
मागामि जन्मन्यपि नो करिष्ये।
यदीदृशोऽहं मम तेन नष्टा,
भूतोद्भवद्भावि भवत्रयीश !२३

सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्माजन्य में, उसको करूंगा मैं कहीं।
इस भांति का यदि हूं जिनेश्वर ! क्यों न मुझको कष्ट हो ?
संसार में फिर जन्म मेरे, त्रिविध कैसे नष्ट हों ।।२३

भावार्थ–हे भगवान् ! पूर्व भव में भी मैंने पुण्य नहीं किया (करता तो इस भव में सुख मिलता इस भव में भी मैं कुछ पुण्य उपार्जन नहीं करता हूँ) तो आगामी भव में कहां से पुण्य कर सकूंगा ? हे नाथ ! इसलिए मेरे भूत, वर्तमान और भविष्य के तीनों भव नष्ट हो गये।

O Lord ! I did not perform any meritorious deed in the past lives (Had I done so, why should then I have to experience miseries now ! nor I am doing any such virtuous act now), nor shall I be able to accomplish any meritorious act in the next life. O Lord ! in this way all my past, present and future existence have been lost in vain.

भावार्थ-हे देवों के पूजनीय ! आपके सामने मैं अपने चरित्र को विविध रीति से व्यर्थ ही कह रहा हूँ। क्योंकि आप तो तीन लोक के स्वरूप को जानते हैं तो मेरा यह चरित्र तो जरा-सा ही है, इसे आप जाने इसमें क्या नवीनता है।

O Ye Lord, venerated by the gods ! I am narrating the memoir of mine in various ways. In comparison to your omniscient knowledge of Three worlds, my memoir is only a whit (As such it is no novelty if you already know it).

दीनोद्धार-धुरंधरस्त्वदपरो, नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नाऽत्र जने जिनेश्वर ! तथा-ऽप्येतां न याचे श्रियम्।
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधि-रत्नं शिवं ।
श्री रत्नाकर-मंगलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ।।२५ ।

दीनोद्धारक वीर आप सा अन्य नही है,
कृपा-पात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कहीं है।
तो भी मागू नही धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न दें मुझे मंगल-कर ।।
श्री रत्नाकर गुण-गान यह दुरित दुःख सब के हरे ।
अब एक यही है प्रार्थना मंगल मय जग को करे ।।२५

भावार्थ–हे जिनदेव ! इस लोक में गरीबों का उद्धार करने में निपुण आप जैसा दूसरा नहीं है और मेरे जैसा दया का पात्र भी दूसरा नहीं है, तो भी मैं सांसारिक लक्ष्मी की याचना नहीं करता। लेकिन हे लक्ष्मी के सागर ! हे मंगल के एकमात्र घर ! हे अरिहंत देव ! मैं कल्याणकारी, मोक्ष देने वाले सम्यग् ज्ञान रूपी रत्न की ही प्रार्थना करता हूँ ।

O Ye Lord ! there is no other more dexterous leader than thee in redeeming the downtrodden and there is no other man worthy of more compassion than me. Despite this I do not crave the temporal riches. But O Ye the ocean of spiritual wealth ! the only Abode of Bliss ! O Ye Lord the Reverend ! I implore only the benedictory gem of Right knowledge leading to Salvation.
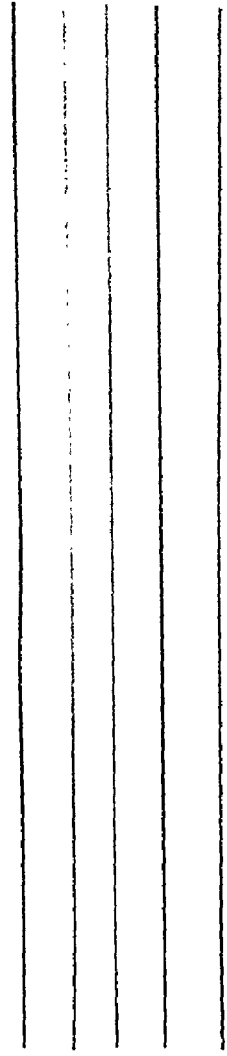
सामायिक पाठ
SAMAIK PATH

# सामायिक पाठ

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टे जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१

हे देव ! मैं समस्त जगत के जीव मात्र से मैत्री, गुणीजनों के साथ हृदय में प्रेम और जो इस संसार में (रोग, शोक, भूख पिपासादि) बाधाओं से पीड़ित हैं उनके लिए अंतरंग में दया भाव, जो विपरीत स्वभाव वाले (दुर्जन, क्रूर, कुमार्गी, मिथ्या-त्वी) पुरुष हैं, उनके साथ माध्यस्थभाव चाहता हूँ ।

O Lord ! it is my ardent desire that I may always cherish love (friendship) for all beings, feel pleasure in the company of persons endowed with merits, feel compassion for the afflicted and be equanimous (tolerant) at those perversety inclined.

शरीरतः कर्त्तुमनन्त शक्तिं,
विभिन्नमात्मानमपास्त दोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्ग यष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ।।२

हे जिनेन्द्र ! आपकी परम कृपा से मुझ में ऐसी शक्ति पैदा हो कि जिस प्रकार म्यान से तलवार अलग हो जाती है उसी प्रकार मेरी इस अनन्त शक्तिशाली, निर्दोष, शुद्ध, वीतराग आत्मा को इस नश्वर शरीर से अलग कर दूँ ।

O Jinendra ! By thy grace I may be able to dissociate, like the sword from the sheath, my soul which is blemish-free and possessed of infinite power, from the body.

दुःखे सुखे वैरिणि बंधु वर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृता शेष ममत्व बुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ।।३

प्रभो ! समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुःख में, सुख में, वैरियों अथवा बन्धु समूह में; इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग में; गृह में, वन में हमेशा समभाव को धारण करे।

O Lord ! may my mind having relinquished all the feelings of attachments (myness) retain equilibrium in prosperity and adversity, among friends or foes, at union and separation (gain or loss) at home or forest.

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः,
प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़िता,
ममास्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५

देव ! यदि मुझ से प्रमाद पूर्वक इधर-उधर चलते हुए एकेन्द्रियादि प्राणी नाश किये गये हों। खंडित किये गये हों, कोई मसल दिये गये हों, पीड़ित किये गये हों तो मेरा यह सारा दुष्कर्म मिथ्या होवे।

O Lord ! I have by my careless movements destroyed, cut asunder, crushed (or brought together in incompatible connection) or twisted any organism possessing one or more sense-organs, may such wrong acts of mine be treated as nought.

विमुक्तिमार्ग प्रतिकूलवर्त्तिना,
मया कषायक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्र शुधेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ।।६

प्रभो ! मैं मोक्ष मार्ग से विपरीत चलने वाला हूँ, दुर्बुद्धि हूँ, चार कषाय, पांच इन्द्रियों के वश होकर मेरे द्वारा जो कुछ चारित्र की निर्मलता का विनाश किया गया हो, वह मेरा दुष्कृत नाश होवे ।

विनिन्दना लोचना गर्हणैरहं,
मनोवचः काय कषाय निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःख कारणं,
भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवा खिलम् ॥७

संसार के दुखों का कारण जो कुछ भी पाप मैंने मन, वचन काय और कषायों के द्वारा किया हो, उनको मैं अपनी निंदा, आलोचना और घृणा करके इस प्रकार नष्ट करता हूँ कि जिस प्रकार वैद्य समस्त विष को मंत्र के गुणों से दूर कर देता है ।

Just as a physician nullifies the effect of poison by the power of incantations, so by self-censure, introspection and reproach, I exterminate sin being the source of wordly afflictions whether it be committed through mind, speech, body or passions.

अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं सुचरित्र कर्म्मणः ।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८

हे जिनदेव ! मैंने दुर्बुद्धि से प्रमादवश अपने उत्तम चरित्र में जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचारादिक दोष किये हों, उनकी शुद्धता के लिए मैं पश्चाताप करता हूँ ।

O Conqueror of kama foes ! I sanctify myself by expurgating for all foolish deviations, from rectitude, due to indifference (Carelessness) whether it may amount to 'Atikrama-'Vyatikrama' 'Atichar' or 'Anachar'.

क्षति मन: शुद्धि विधेरति क्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥६

प्रभो ! मन की निर्मलता में क्षति होना अतिक्रम है, शील वृत्ति का उल्लंघन करना व्यतिक्रम है, विषयों में परिवर्तन करना अतिचार है और विषयों में अत्यन्त आशक्त होना अनाचार है। इस प्रकार आचार्य कहते हैं।

9. 'Atikrama' is defiling the sanctity of mind 'Vyati-Krama' is transgression of moral laws; 'Atichar'., O Lord ! is indulgence in sensual pleasures and 'Anachar' is defined as excessive engrossment.

यदर्थ मात्रा पदवाक्च हीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवल बोध लब्धिम् ॥१०

मेरे द्वारा प्रमादवश यदि अर्थ, कामा, पद और वाक्य से हीनाधिक जो कुछ भी वचन कहा गया हो तो सरस्वती देवी क्षमा करके मुझे केवल ज्ञान की प्राप्ति करावें ।

O Goddess Sarswati (Jina Vani i. e. the word of Lord Conqueror). Pray, forgive me, if through inattention, I have uttered any thing wanting in meaning, spelling, word or sentence and grant me the boon of knowledge absolute.

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः,
स्वात्मोपलब्धिः शिव सौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने,
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ! ११

हे देवी ! तुम इच्छित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हो अतः मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। तेरे ही प्रसाद से मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामों की निर्मलता और आत्म स्वरूप की प्राप्ति तथा शिव सुख की सिद्धि होवे।

O Goddess ! Thou art like the Jewel-'Chintamani' (Philosophers' stone) capable of granting whatever desired on making obeisance to you, may you grant me self-awakening, equanimous mind (Perfect peace), purity of thought, self-realisation and everlasting beatitude (Bliss).

य: स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैर्:-
य: स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रै: ।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रै:,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ।१२

जो परमात्मा बड़े-बड़े ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों के समूह द्वारा स्मरण किया जाता है । जिसको सर्व बड़े-बड़े छ खण्ड के अधिपति चक्रवर्त्यादिक मनुष्य और देवेन्द्र स्तुति करते हैं और जिनकी महिमा द्वादशांग रूप वेद में व बड़े-बड़े पुराणों, शास्त्रों में गाई जाती है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में आकर विराजमान हो ।

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who is contemplated by the groups of great ascetic saints, who is eulogised by all the monarchs and celestial Lords, whose praise is chanted in the Vedas, Puranas ar Scriptures.

यो दर्शन ज्ञान सुख स्वभावः
समस्त संसार विकार बाह्यः ।
समाधि गम्यः परमात्म-संज्ञः,
स देवदेवो हृदये समास्ताम् ।।१३

जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, अनन्त सुखरूप स्वभाव को धारण करने वाला है, जो सम्पूर्ण संसार के विकार पैदा करने वाले परिणामों से रहित है, जो परमोत्कृष्ट ध्यान के द्वारा जानने योग्य है तथा जिसका नाम परमात्मा है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो।

May that Lord of Lords dwell in my heart, whose nature is perception, knowledge and happiness, who is free from all kind of worldly imperfections, who can be realised by pure unruffled self-contemplation, and who is nomenclatured as Supermost-self.

निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगि-निरीक्षणीयः,
स देवदेवो हृदये ममस्ताम् ॥१४

जो जगत् के दुःख समूह को नष्ट करता है। जो इस जगत् में सर्व पदार्थों को देखता है। जो अन्तरंग में प्राप्त है और जो ध्यानियों द्वारा देखने योग्य है। वह देवाधिदेव मेरे अन्तरङ्ग में विराजमान हो।

May that Lord of Lords abide in my heart who destroys all the trammels of the world, who sees even the interscises of the universe who can be realised in the inner-self by the devoted meditators.

विमुक्ति मार्ग-प्रतिपादको यो,
यो जन्म-मृत्युर्व्यसनाद् व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी सकलोऽकलंकः,
स देवदेवो हृदये: ममस्ताम् ॥१५

जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाला है, जो जन्म-मरण रूप कष्टों से दूर है, जो तीन लोक को देखने वाला है, देह रहित कर्म कलंक से रहित है, वह देवों का देव मेरे हृदय में विराजमान हो ।

May that Lord of Lords,, take abode in my heart who is the Demonstrator of the path of Emancipation (Salvation), who has crossed ashore the calamities of birth, (old-age) and death, who observes the three worlds, is bodiless and blimish-free.

क्रोडीकृताशेष-शरीरि वर्गा,
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरीन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६

जिन रागादि दोषों को समस्त प्राणी धारण किये हुए हैं, ऐसे रागादि दोष जिसके नहीं हैं, जो स्पर्शादि पांच इन्द्रियों से तथा मन से रहित है, ज्ञानमय और अविनाशी है, वह देवाधि-देव मेरे हृदय मंदिर में विराजमान होवे।

यो व्यापको विश्वजनीन-वृत्तिः,
सिद्धो विबुद्धोधुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममस्ताम् ॥१७

जो तीन जगत के पदार्थों को देखने वाले ज्ञान की अपेक्षा समस्त लोक के पदार्थों में व्यापक है, सिद्ध है, बुद्ध है और कर्म बन्धों का जिसने नाश कर दिया है। जिसका भव्य जीव ध्यान करते हैं और जो समस्त विकारों को नष्ट कर देता है वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो।

May that Lord of Lords be enshrined in my heart whose knowledge is omnipresent in all the things, of the universe, who is perfect (Liberated) and self-awakened, who has annihilated the Shackles of all 'Karmas' and by meditation of whom, all forms of evils are shed off.

न स्पृश्यते कर्मकलंक दोषैर्,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८

जिस प्रकार सूर्य की किरणों का समूह अंधकार के समूह द्वारा स्पर्श नहीं किया जाता, उसी प्रकार जो परमात्मा कर्म करने रूपी दोषों से नहीं स्पर्श किया जाता, जो देव कर्म रूपी अंजन से रहित है, जो वस्तु स्थिति की अपेक्षा नित्य और गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक है, द्रव्यापेक्षा एक है उस आप्त देव की शरण में प्राप्त होता हूं।

I seek shelter of in that Supreme Lord, who cannot be contaminated by the 'Karmic' filth, Just as clouds of darkness cannot affect the strong-rayed Sun, and who is stainless, eternal, one and many.

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमय-प्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१६

जिस भगवान के विराजमान रहने पर तीन लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता। ऐसे अपनी आत्मा में स्थित ज्ञान स्वरूप प्रकाशमय सच्चे देव की शरण में प्राप्त होता हूँ।

I take refuge in that perfect-Lord who is seated in our own self and diffuses the light of wisdom and on whose illuminating the universe, the Sun also does not shine.

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,
त देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०

अवलोकन करने पर जिनके ज्ञान में यह जगत् अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देता है अर्थात् जिसके ज्ञान के इस संसार के हर एक पदार्थ अलग-अलग स्पष्ट झलकते हैं, ऐसे शुद्ध कल्याण-स्वरूप, शान्त आदि अन्तरहित आप्त देव की शरण में प्राप्त होता हूँ ।

I seek the protection of that Supreme Master, by seeing whom all the Universe is distinctly and vividly viewed, who is pure, Blissful, Ever Tranquil, without beginning and without an end.

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्छा,
विषाद-निद्रा-भयशोक-चिन्ताः ।
जयानलेनेव तरु-प्रपंचस्,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१

जिस प्रकार वृक्ष के समूहों को अग्नि भस्म कर देती है, उसी प्रकार जिस परमात्मा ने काम, अभिमान, मूर्छा, खेद, निद्रा, भय, शोक और चिन्ता को नष्ट कर दिया है उस आप्त देव की शरण में प्राप्त होता हूँ ।

I recede to the shelter of the Supreme Lord, who has annihilated Libido (Cupidity), pride, attachment (delusion), anguish, sleep, fear, sorrow and anxiety like a wild fire, that burns the whole expanse of vagitation (forest).

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्ष-कषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२

सामायिक के लिए विधान से न तो पत्थर को ही आसन माना है, न घास को, न पृथ्वी को और न काष्ट की चौकी आदि को इसलिए जिस आत्मा ने इन्द्रिय कषाय रूपी शत्रु को नष्ट कर डाला है वह निर्मल आत्मा ही विद्वानों द्वारा आसन माना गया है।

Neither a cushion of stone, nor of grass, neither ground nor wooden plank has been recognised by ordinations for the purpose of meditation. But, the wise have described only that Soul as the pure seat which has subdued the foes of sense organs, and extinguished the passions.

न संस्तरो भद्र ! समाधि-साधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम् ॥२३

हे भव्य ! वास्तव में समाधि (सामायिक) का साधन न तो सन्थारा ही है, न लोगों की पूजा और न संघ का सम्मेलन ही है । इसलिए तू सम्पूर्ण बाहिर की वासनाओं को छोड़ कर आत्मा में लवलीन हो ।

My auspicious aspirant ! No seat is needed for the attainment of Tranquil—peace, nor reverence by the public, nor assembly gatherings. Renounce all these external longings and engage thyself. Constantly in thine own Soul in what ever possible way.

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाऽहम् ।
इत्थं विनिश्चत्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र ! मुक्त्यै ॥२४

मेरे आत्मा से बाहर के जो कुछ भी पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं और मैं भी उनका कभी नहीं हूँ। हे भद्र! इस बात का निश्चय कर बाह्य सम्बन्धी बातों को छोड़ कर मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वथा ही अपनी आत्मा में स्थिर हो।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१

जीव अपने उपार्जित किए हुए कर्मों का ही फल पाता है। अपने उपार्जित कर्मों को छोड़ कर कोई भी किसी को कुछ नहीं देता, इस प्रकार का विचार करते हुए 'दूसरा देता है' ऐसी वुद्धि त्याग कर एकाग्रचित्त होना योग्य है।

"Leaving aside the self-acquired 'Karmas' of the Mundane-soul, no body else gives any thing to any one." Think over this fact with a concentrated mind and give up the idea that there is any body else who gives.

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः,
सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शाश्वदधीते मनसि लभन्ते,
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२

जो जीव अमितगति नाम के ग्रन्थकर्त्ता आचार्य द्वारा वन्दनीय (तथा अमितगति अपार ज्ञान वाले गणधरादिकों से वन्दनीय) सबसे अलग और अतिशय प्रशंसा योग्य परमात्मा को अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करते हैं, वे जीव उत्कृष्ट मोक्ष, लक्ष्मी को पाते हैं ।

Those persons who ceaselessly (perpetually) in their minds meditate upon the Highest Self, who is adored by Amitgati (the author of this anthology or by Gandharas' etc. possessed of unbounded acumen), who is distinct from every thing, who is worthy of high praise, attain Salvation abounding in the magnificient wealth of Supreme-Bliss.